भारत वर्ष में मिशनरी शिक्षा : योगदान
तथा
वर्तमान समय में उपादेयता

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी के अन्तर्गत
पी-एच० डी० उपाधि हेतु प्रस्तुत
शोध - प्रबन्ध
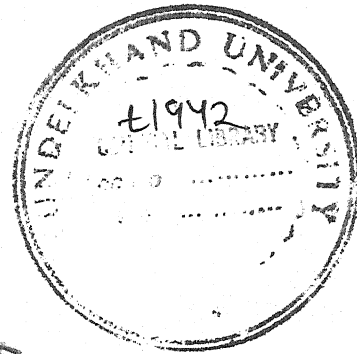
निर्देशिका :
डा० मृदुला भदौरिया
रीडर, शिक्षा विभाग
छत्रपति शाहू जी महाराज कानपुर
विश्वविद्यालय, कानपुर

शोधकर्ता :
नीलम सिंह

१९९९
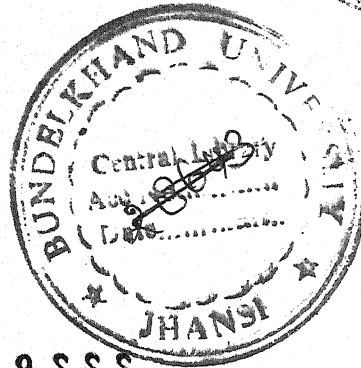
घोषणा–पत्र

मैं यह घोषणा करती हूँ कि पी–एच०डी०(शिक्षा) की उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध मेरी मौलिक रचना है। इससे पूर्व मेरे द्वारा चयनित विषय से सम्बन्धित शोध–प्रबन्ध प्रस्तुत नहीं किया गया है। अपनी निर्देशिका के सुयोग्य पथ प्रदर्शन में जिन शोधों, पुस्तकों, पत्र–पत्रिकाओं व रिपोर्ट्स से इस शोध कार्य में सहायता ली गई है, उसका उल्लेख सन्दर्भ ग्रन्थ सूची में है।

नीलम सिंह

निर्देशिका

शोधार्थी

प्रमाण–पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि श्रीमती नीलम सिंह ने बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी के अन्तर्गत पी–एच०डी० (शिक्षा) की उपाधि हेतु ''भारतवर्ष में मिशनरी शिक्षाः योगदान तथा वर्तमान समय में उपादेयता'' शीर्षक पर मेरे निर्देशन में कार्य किया है और उन्होने विश्वविद्यालय के नियमानुसार अपनी उपस्थिति (२०० कार्य दिवस से अधिक) पूरी करते हुए अपना शोध कार्य सम्पन्न किया है।

प्रस्तुत शोध कार्य इनका मौलिक कार्य है।

MBhadauria

डा० मृदुला भदौरिया

निर्देशिका

प्राक्कथन

मानव इतिहास में शिक्षा समाज के विकास के लिए एक आधार रही है। यहाँ तक कि राष्ट्रों तक के विकास में मानव संसाधनों द्वारा अदा की गयी जो भूमिकायें महत्वपूर्ण सिद्ध हुई हैं जो शिक्षा का मुख्य कार्य रहा है। आज शिक्षा द्वारा मानव को मानवता का पाठ पढ़ाया जाना नितान्त आवश्यक है। हमारा देश एक प्रजातन्त्र देश है इसमें उत्तम एवं आदर्श नागरिकता हेतु शिक्षा देना अनिवार्य है। समाज में स्त्री शिक्षा, बालकों की शिक्षा, निःशुल्क शिक्षा, निम्न वर्ग की शिक्षा, बहुशिक्षक प्रणाली, शिक्षक, प्रशिक्षण, लिखित अध्ययन पद्धति का प्रारम्भिक कक्षा प्रणाली का कितना महत्व है। प्रत्येक को इस ओर अग्रसर होना चाहिए।

सर्वप्रथम मै अपनी पूज्य निर्देशिका डा० (श्रीमती) मृदुला भदौरिया जी के प्रति अपना आभार प्रकट करती हूं, जिन्होने अपना अमूल्य समय देकर तथा मेरे शोध का निर्देशन कर मेरी समस्याओं का समाधान किया। आपने मुझे शक्ति, बल और प्रेरणा देकर कृतार्थ किया है जिससे यह प्रयास प्रस्तुत हो सका है, साथ में डा० कौशलेन्द्र भदौरिया (डी०लिट०) उपाचार्य, राजकीय महाविद्यालय मंधना की अति आभारी हूं, जिन्होने मुझे पुत्रीवत स्नेह दिया है, प्रेरणा के स्त्रोत रहे हैं। उनकी कृपा ही मेरी पथ प्रदर्शक रही है।

मैं साथ में अपने पति अजय सिंह के प्रति किन शब्दों में आभार व्यक्त करूं। उन्होने पारिवारिक दायित्वों को निभाते हुए हर पग पर सहायता व ढांढस बंधाया है, जिसका यह परिणाम सामने आ सका है। साथ में मेरे पूज्य ससुर श्री धनंजय सिंह जी तथा सास विद्यावती सिंह जी का शुभ आर्शिवाद है जिससे यह कार्य पूर्ण हो सका है। साथ में, मैं अपने देवर विजय कुमार सिंह के प्रति मैं आभार प्रकट करती हूं जिन्होने काफी सहयोग किया है जिसे मैं जीवन पर्यन्त याद रखूंगी।

मैं उन शिक्षाविदों, सहभागियों, मित्रों के प्रति भी अपना आभार प्रकट करती हूं जिन्होने मुझे प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से इस शोध प्रबन्ध को पूर्ण करने में सहयोग दिया है। पुस्तकालयों, शिक्षा निदेशालय और संग्रहालय के सहयोग से जो रूप इस शोध प्रबन्ध को मिला है – हृदय से उनका आभार प्रकट करती हूँ।

अतः मेरा यह प्रयास आपके समक्ष है, जो भी शिक्षा जगत को इसके द्वारा यदि लाभ हो सकेगा तो मैं अपने को धन्य मानूंगी। आप सभी के शुभ आर्शिवाद से यह प्रयास प्रस्तुत हुआ है। यह मेरा सौभाग्य है।

अनुक्रमणिका

प्रथम अध्याय

प्रस्तावना

अध्ययन की आवश्यकता

अध्ययन के उद्देश्य

अनुसंधान की विधि

सम्बन्धित साहित्य का अध्ययन

प्रस्तावना

मनुष्य एक बृद्धिजीवी प्राणी है जो मानव सभ्यता की आद्य–बेला से अपने बुद्धि कौशल के बल पर इस ब्रह्माण्ड की गुत्थियों को सुलझाने तथा प्रकृति पर नियंत्रण प्राप्त करने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहा है। मानव संस्कृति की विकास यात्रा में शिक्षा मनुष्य की महत्तम उपलब्धि तथा उसकी प्रगति का प्रमुख उपादान रही है। समय के प्रवाह में शिक्षा का स्वरूप एवं शिक्षा–पद्धतियों की सरंचना में परिवर्तन होते रहें है। इतिहास साक्षी है कि विभिन्न कालों में विभिन्न समाजों ने अपनी–अपनी विशिष्ट परिस्थितियों तथा आवश्यकताओं के अनुरूप शिक्षा की परिकल्पना तथा शिक्षा–प्रणाली का गठन किया है। मार्क्सवादी विचारकों के अनुसार शासक वर्ग शिक्षा के माध्यम से जनता पर अपना नियंत्रण पुष्ट करते हैं। अन्य विचारधाराओं के चिन्तक शिक्षा को समाज के रचनात्मक परिवर्तन का साधन मानते हैं।

यद्यपि विभिन्न युगों और समाजों में शिक्षा की सैद्धान्तिक अवधारणाओं तथा व्यवहारिक प्रणालियों में व्यापक अन्तर दृष्टिगत होते हैं, आधारभूत रूप से शिक्षा की प्रक्रिया व संगठन में एक कालातीत और सर्वव्यापी समानता परिलक्षित होती है। सभ्य मनुष्य ने शिक्षा को ज्ञान तथा विज्ञान प्रसार का कारक, वर्तमान की आवश्यकताओं के विश्लेषण का माध्यम तथा भविष्य के रूप निर्धारण का साधन माना है। इसी कारण प्रत्येक समाज एक आदर्श शिक्षा व्यवस्था का विकास करने के लिए प्रयासरत रहा है।

इस उद्यम में राज्य (अर्थात राजनीतिक सत्ता) के अतिरिक्त संगठित अथवा असंगठित रूप से व्यक्तियों एवं समष्टियों ने भी भिन्न–भिन्न सीमाओं तक प्रतिभाग किया है। इन प्रयासों का ऐतिहासिक अवलोकन ने केवल अतीत की वास्तविकताओं का सही संज्ञान दे सकता है, वरन शिक्षा के विकास क्रम के विशद अन्वेषण में भी महत्वपूर्ण रूप से सहायक हो सकता है।

भारत में आदिकाल से शिक्षा को मानव जीवन का महत्वपूर्ण पक्ष माना जाता रहा है। वैदिक काल में शिक्षा की कोई संगठित व्यवस्था नहीं थी, परन्तु ऋषियों–मुनियों एवं अन्य विद्वानों को सर्वोच्च सादर दिया जाता था तथा उनके ज्ञान एवं वचनों को पथ–प्रदर्शन लिया जाता था। ज्ञानार्जन को एक उत्कृष्ट गतिविधि की मान्यता दी गयी तथा उसके माध्यम से आदर्श जीवन का अन्वेषण किया गया। वैदिक युग में शिक्षा की आदर्शवादी तथा मूल्यबोध पर आधारित अवधारणा की परिणति उत्तर–वैदिक काल की गुरूकुल व्यवस्था में हुई। शासकों ने शिक्षा को लोक–कल्याणकारी प्रक्रिया के रूप में विविध प्रकार का प्रश्रय प्रदान किया। राज्य के समर्थन से शिक्षा एवं विद्या के प्रतिष्ठित केन्द्रों का विकास हुआ, जिनमें विद्वानों या विद्वसमूहों के संरक्षण में विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करते थे। कालान्तर में ऐसे कतिपय केन्द्र विश्वविद्यालयों (जैसे तक्षशिला, नालन्दा एवं विक्रमशिला) में रूपान्तरित हुए। इसी अवधि में नगरों एवं ग्रामों में पाठशालाओं, विद्यालयों तथा अनौपचारिक विद्या अध्ययन की व्यवस्था भी विकसित हुई। गुप्त साम्राज्य के विघटन के बाद की राजनीतिक हलचल

तथा भारत के विभिन्न भागों में क्षेत्रीय सत्ताओं के उतार–चढ़ाव के दौरान भी शिक्षा का महत्व बना रहा तथा उसके निमित्त विभिन्न व्यवस्थायें क्रियाशील रहीं।

बारहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में तुर्क आक्रमणों के अन्तर्गत यद्यपि शिक्षा के अनेक प्रमुख केन्द्रों का विध्वंस हुआ, तथापि मुस्लिम सत्ताओं की स्थापना के उपरान्त शिक्षा–दीक्षा की गतिविधियां चलती रहीं। मुस्लिम राज्यों में इस्लामी शिक्षा की व्यवस्था एवं संस्थाओं का विकास हुआ तथा अनेक मुस्लिम शासको ने हिन्दू शासकों की तरह हिन्दू विद्या केन्द्रों तथा शिक्षालयों को राज्याश्रय भी प्रदान किया। सम्पन्न हिन्दू मुस्लिम परिवारों के बालकों के लिए घरों में प्रारम्भिक शिक्षा के उपरान्त उच्च शिक्षा के केन्द्रों या संस्थाओं में उच्चतर अध्ययन की सुविधा थी। जनसाधारण के लिए प्रारम्भिक शिक्षा की व्यवस्था ग्रामीण या नगरों पाठशालाओं तथा मस्जिदों से जुड़े मकतबों में थी, जो राज्य या धनाढ्य परिवारों के अनुदानों पर सामान्यतः संचालित थीं। साधारण परिवारों के मेधावी विद्यार्थियों को भी उच्चतर शिक्षा के अवसर उपलब्ध थे, क्योंकि अनेक केन्द्र एवं संस्थाएं निःशुल्क शिक्षण प्रदान करते थे। शिक्षा की यह व्यवस्था ब्रिटिश शासन की स्थापना के बाद भी प्रायः मध्य उन्नसवीं शताब्दी तक किसी न किसी सीमा तक चलती रही।

ब्रिटिश शासन के अधीन शिक्षा की पारम्परिक व्यवस्था में अमूल परिवर्तन हुए। यह प्रक्रिया १८३० के दशक के उपरान्त तीव्र गति से सम्पन्न हुई। ब्रिटिश शिक्षा नीतियों एवं उपक्रमों के प्रभाव में पश्चिमी मानकों पर आधारित आधुनिक

शिक्षा प्रणाली एवं संस्थाओं का विकास हुआ। इस प्रक्रिया में राज्य द्वारा स्थापित एवं संचालित विद्यालयों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी, परन्तु गैर–सरकारी प्रयासों का भी योगदान पर्याप्त था। ऐसे प्रयासों में नागरिक संगठनों के अतिरिक्त ईसाई धर्म–प्रचारकों मिशनरियों के व्यक्तिगत तथा संगठनों के माध्यम से सम्पन्न शैक्षिक कार्यों का कार्य प्रभावशाली था। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में मिशनरियों के शैक्षिक प्रयासों एवं योगदान का समीक्षात्मक विवेचन का प्रयत्न किया गया हैं।

अध्ययन की आवश्यकता एवं उद्देश्य –

पन्द्रहवीं शताब्दी के दौरान पश्चिमी यूरोप के समुद्र–तटीय देशों में व्यापार के विस्तार का नवीन अध्याय प्रारम्भ हुआ, जिसमें यूरोपीय महाद्वीप एवं उससे सन्निकट पश्चिमी एशिया तथा उत्तरी अफ्रीका के क्षेत्रों तक सीमित वाणिज्य को समुद्रपार सुदूरवर्ती महाद्वीपों तक विस्तृत करने के महत्वपूर्ण प्रयास किये गये। मध्य युग से ही इन देशों को भारत के उत्कृष्ट उत्पादों की जानकारी थी परन्तु तत्कालीन उथल–पुथल तथा भूतल मार्ग द्वारा भारत से सम्पर्क में आये व्यवधान के परिणास्वरूप इन उत्पादों को यथेष्ट मात्रा में तथा निरन्तर प्राप्त करना असम्भव हो चुका था। इन उत्पादों के लिए व्यापक मांग और उनके व्यापार में विशाल लाभ की सम्भावनाओं के कारण, इन देशों के व्यापारी इस दिशा में प्रयत्नशील रहे। २७ मई, १४९८ में पुर्तगाली नाविक वास्को डी गामा द्वारा भारत के लिए समुद्री मार्ग के सफल अन्वेषण ने इन व्यापारियों की मनोकामनाओं की पूर्ति के द्वार खोल दिये। पुर्तगाल द्वारा गोवा पर अधिकार

स्थापित करने के बाद भारत से लाभदायक वाणिज्य की सिद्धि ने अन्य देशों के व्यापारियों और शासकों को उसके अनुकरण की प्रेरणा दी।

सोलहवीं शताब्दी के दौरान अनेक देशों के नाविकों एवं व्यापारियों ने भारत की यात्रायें की तथा भारत का भौगौलिक वृतान्त व्यापक जानकारी में आया। इसी अवधि में यूरोप के कैथोलिक ईसाईयों के भिक्षुक संगठन ''सोसाइटी आफ जीजस'' (जेसुइट समुदाय) ने भारत में ईसाई धर्म प्रचार की सम्भावनाओं पर ध्यान दिया। इस सम्बन्ध में पुर्तगाल द्वारा नियंत्रित भारत के क्षेत्रों में ईसाई धर्म के प्रसार ने इन्हें विशेष रूप से उत्साहित किया। १५८० में मुगल सम्राट अकबर के दरबार में गोवा से दो जेसुइट भिक्षु आये, तथा उसके उपरान्त १५६१ में अकबर की अनुमति से लाहौर में जेसुइटों ने एक गिरजाघर निर्मित किया तथा कुलीन परिवारों के बालकों के लिए एक विद्यालय भी खोला। अकबर के राज्यकाल में फ्रांस के कुछ कैथोलिक धर्म प्रचारक भी आगरा पहुंचे। इस समय तक इंग्लैण्ड, नीदरलैण्ड, डेनमार्क तथा स्वीडन के व्यापारियों ने अपनी–अपनी ईस्ट इण्डिया कम्पनियां स्थापित की तथा मुगल साम्राज्य एवं अन्य स्वतन्त्र शासकों से भारत में व्यापार की अनुमति प्राप्त की। इन व्यापारिक गतिविधियों के सुदृढ़ होने पर, इन कम्पनियों के संचालकों ने तत्कालीन यूरोप में गैर–ईसाई क्षेत्रों से ईसाई धर्म के बढ़ते दबाव के कारण अपने व्यापारिक जहाजों में ईसाई धर्म प्रचारकों को भी ले जाना प्रारम्भ किया।

१६५६ में इंग्लैण्ड की ईस्ट इण्डिया कम्पनी के निदेशक मंडल ने यह उद्देश्य व्यक्त किया कि वह व्यापार के साथ–साथ भारत में ईसाई धर्म प्रसार के लिए भी प्रयत्न करेंगें १६६८ मे जब ब्रिटेन की संसद ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी के व्यापार के अनुमति पत्र का नवीकरण किया, तो यह प्रतिबन्ध जोड़ दिया कि कम्पनी अपने भारतीय प्रतिष्ठानों में ईसाई पादरियों को तैनात करेगी तथा अपने बड़े जहाजों में एक पादरी ले जायेगी। इन पादरियों से अपेक्षा थी कि वह स्थानीय भाषायें सीखकर कम्पनी गैर–ईसाई धर्म की शिक्षा देंगें। यद्यपि इन प्रब्रन्धों से ईसाई धर्म के विस्तार में बहुत अधिक सहायता नहीं मिली तथापि इनके निष्कर्ष में ईसाई धर्माधिकारियों को यह अनुभव अवश्य प्राप्त हुआ कि ईसाई धर्म के प्रसार मे उपदेशों के बजाय शिक्षा संस्थानों के माध्यम से किये गये कार्य अधिक सार्थक हो सकते है। इस प्रकार यूरोप के ईसाई मिशनरियों का भारत में शिक्षा से सम्बन्ध स्थापित हुआ। इसी प्रकार की परिस्थितियों नीदरलैण्ड, फ्रांस, डेनमार्क तथा स्वीडन की ईस्ट इण्डिया कम्पनीयों की गतिविधियों में परिलक्षित होती है, तथा इंग्लैण्ड के अतिरिक्त इन देशों के ईसाई मिशनरियों ने भी शिक्षा को अपनी गतिविधियों का एक महत्वपूर्ण उपादान बनाया। १७६५ में जब इंगलैण्ड की ईस्ट ईण्डिया कम्पनी ने बंगाल की दीवानी प्राप्त करने के उपरान्त अपना शासनाधिकार स्थापित किया जब उसने स्थानीय जनता में ईसाई मिशनरियों की गतिविधियों के विरूद्ध प्रतिक्रया की आंशका से उन्हें अपने प्रभाव क्षेत्र में आने, रहने तथा धर्म–प्रचार करने से प्रतिबन्धित कर

दिया। यह प्रतिबन्ध १८१३ तक बना रहा, परन्तु इस अवधि में ब्रिटेन की संसद द्वारा पारित चार्टर एक्ट ने इस प्रतिबन्ध को समाप्त कर दिया तथा ब्रिटिश शासित क्षेत्रों में एक बार फिर ईसाई मिशनरी गतिविधियां प्रारम्भ हुई तथा तीव्र गति से विस्तृत हुई।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में भारत में ईसाई मिशनरी संगठनों की शिक्षा के क्षेत्र में गतिविधियों एवं उनके शैक्षिक योगदान के अन्वेषण का प्रयास किया गया है। यह अध्ययन इसलिए महत्वपूर्ण है कि यद्यपि ईसाई मिशनरी शिक्षा का मौलिक उद्देश्य ईसाई धर्म प्रचार एवं प्रसार करना था, तथापि उसने इस उद्देश्य से कहीं अधिक भारत में आधुनिक शिक्षा के विकास क्रम को पुष्ट करने में योगदान दियां इस योगदान का विवेचन और आकलन भारत में आधुनिक शिक्षा के विकास की प्रक्रिया के महत्वपूर्ण पक्षों को आलोकित करने में सहायता दे सकता है। क्या मिशनरी शिक्षा का भारत में आधुनिक शिक्षा के विकास में योगदान महत्वपूर्ण था ? इस योगदान ने क्या रूप ग्रहण किये ? क्या इसने ब्रिटिश शासन की शिक्षा नीति को प्रभावित किया, तथा यदि किया तो किन दिशाओं एवं किसी सीमा तक यह प्रभाव था ? मिशनरी शिक्षा प्रयत्नों की विरासत क्या है ? वर्तमान समय में मिशनरी शिक्षा के कार्यों एवं उपलब्धियों की क्या उपादेयता है ? यह प्रश्न भारतीय शिक्षा के इतिहास के लिए महत्वपूर्ण है तथा प्रस्तुत शोध प्रबन्ध इन प्रश्नों पर लक्षित है।

शोध के उद्देश्य –

१. मिशनरियों के पूर्व शिक्षा के स्वरूप का अध्ययन करना ।

२. मिशनरियों का आगमन व उनके शैक्षिक विचारों के प्रभाव का अध्ययन करना ।

३. विभिन्न मिशनरियों के शैक्षिक प्रयासों का अध्ययन करना ।

४. मिशनरियों का शिक्षा में योगदान का अध्ययन करना ।

५. मिशनरियों के शैक्षिक प्रयासों को वर्तमान समय में उपादेयता का अध्ययन करना ।

अध्ययन की परिधि तथा विन्यास –

अध्ययनकर्ती ने "भारतवर्ष में मिशनरी शिक्षा : योगदान तथा वर्तमान समय में उपादेयता" विषय को लिया है, शोध विषय की व्यापकता को देखते हुए इसे १६०० से १८५३ तक की कालावधि में ही सीमित करना पड़ा है।

१६०० का वर्ष इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि इंग्लैण्ड की साम्राज्ञी एलिजाबेथ ने ३१ दिसम्बर, १६०० ई० को ईस्ट इण्डिया कम्पनी को पूर्वी देशों के साथ व्यापार करने का आज्ञापत्र जारी किया। कम्पनी ने १६११ ई० में मछलीपट्टम और १६३१ ई० में सूरत में अपने कारखाने स्थापित किये उन दिनों ब्रिटिश कम्पनी के प्रतिद्वन्दी रोमन, कैथालिक धर्म का प्रचार कर रहे थे, अतः इंग्लैण्ड से प्रोटेस्टैट मिशनरियों को भारत बुलाया गया ताकि पुर्तगालियों के

प्रभाव को कम किया जा सके। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए कम्पनी ने मिशनरियों को शिक्षा संस्थायें आरम्भ करने के लिए प्रोत्साहित किया। १७६५ ई० का वर्ष इसलिये महत्वपूर्ण है कि इसके दौरान इंग्लैण्ड की ईस्ट इण्डिया कम्पनी को बंगाल की दीवानी के माध्यम से शासनाधिकार प्राप्त हुआ था, तथा उसने अपने प्रभाव क्षेत्र में ईसाई मिशनरियों गतिविधियों को प्रतिबन्धित करने का निर्णय लिया था। १८५३ में "बुड डिस्पैच" द्वारा ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भारत में शिक्षा नीति तथा शिक्षा व्यवस्था में अत्यन्त महत्वपूर्ण परिवर्तन किये तथा शिक्षा के एक नये युग का सूत्र पात हुआ।

इस शोध के अन्तर्गत निम्न तथ्यों पर प्रकाश डाला गया :–

- भारत की पूर्वकालिक स्थिति और शिक्षा व्यवस्था का अध्ययन किया गया है।
- उस समय की परिस्थितियों का अध्ययन जब मिशनरियां का आगमन हुआ था।
- विभिन्न मिशनरियों के शैक्षिक प्रयासों का अध्ययन किया गया है।
- मिशनरी शिक्षा के प्रभावों का अध्ययन किया गया है।
- इन सबका आधुनिक युग में क्या महत्व है तथा वे कहां तक सार्थक हैं, इसका अध्ययन किया गया है।

अनुसंधान विधि –

इस अध्ययन कार्य में ''ऐतिहासिक विधि'' का प्रयोग किया गया है। यह अध्ययन कार्य की आधार विधि है। इस विधि का सम्बन्ध भूतकाल से होता है। यह भविष्य को समझाने के लिए भूतकाल को विश्लेषण करता है।

इस विधि अन्तर्गत शोधकर्ता ने मुख्यता गौण आंकड़ों का प्रयोग किया है। जिसके अन्तर्गत किताबों तथा तत्कालीन अंग्रेज लेखकों के संस्करणों का अध्ययन किया है। अतः इस विधि द्वारा उस समय की परिस्थितियों का अध्ययन करते हैं तथा उसका प्रभाव उसके ऊपर व समाज पर क्या पड़ा इस विधि द्वारा देखते हैं। * बेस्ट, जॉन के शब्दों में –

> ''ऐतिहासिक अनुसन्धान का सम्बन्ध ऐतिहासिक समस्याओं के वैज्ञानिक विश्लेषण से है। इसके विभिन्न पद भूत के सम्बन्ध में एक नयी सूझ पैदा करते है, जिसका सम्बन्ध वर्तमान और भविष्य से होता है।''

इसके अन्तर्गत अनुसंधानकर्ता को अपनी अध्ययन समस्या को स्पष्ट करना होता है व उनको सीमाबद्ध करना होता है, जिसका समबन्ध अध्ययन सम्बन्धी घटना अथवा विषय से होता है। यहां अनुसंधानकर्ता के लिए यह भी स्थापित करना अनिवार्य ही होता है कि जनसाक्ष्यों व अभिलेखों का उपयोग किया है, वे सब विश्वसनीय व सन्देह रहित है

---

* बेस्ट, जॉन डब्लू, 'रिसर्च इन एजूकेशन', प्रेन्टिस हाल न्यूयार्क, १९६३ पृ.स. ८३

तथा उसने जिन ऐतिहासिक तथ्यों की खोज की है, उनकी यर्थाथता तथा परिशुद्धता उच्च वैज्ञानिक स्तर की है।

अध्ययन कार्य में इस विधि के साथ वर्णनात्मक विधि का भी प्रयोग किया गया है क्योंकि इसका सम्बन्ध वर्तमान से है। इस प्रकार इसके अन्तर्गत यह शोध के विषय का स्तर निर्धारण करने का प्रयास करते हैं।

बेस्ट, जॉन डब्लू. के शब्दों में– **''वर्णनात्मक अनुसंधान क्या है'' का वर्णन एवं विश्लेषण करता है। परिस्थितियां अथवा सम्बन्ध जो वास्तव में वर्तमान है, अभ्यास जो चालू है, विश्वास, विचारधारा अथवा अभिवृत्तियां जो पायी जा रहीं हैं, प्रक्रियायें जो चल रहीं है, अनुभव जो प्राप्त किये जा रहें है अथवा नयी दिशायें जो विकसित हो रहीं है। उन्हीं से इसका सम्बन्ध है। **

इस विषय पर विभिन्न लेखकों द्वारा लिखी गई पुस्तकों का अध्ययन किया गया है साथ ही विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं आदि की सहायता से तथ्यों को एकत्र किया गया है। अनुसंधानकर्ता ने प्रस्तुत शोध कार्य हेतु प्राथमिक एवं गौण दोनों ही प्रकार के स्त्रोतों के आकड़े एकत्र करने में प्रयोग किया है। इस विषय पर विभिन्न लेखकों द्वारा लिखी गई पुस्तकों का अध्ययन किया गया है। साथ ही साथ विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं आदि की सहायता से तथ्यों को एकत्रित किया गया है।

**बेस्ट, जॉन डब्लू. 'रिसर्च इन एजूकेशन', प्रेन्टिस हाल न्यूयार्क, १९६३ पृ.सं.१०२

सम्बन्धित साहित्य का अध्ययन –

सम्बन्धित साहित्य से तात्पर्य उन सभी प्रकार की पुस्तकों, ज्ञानकोषों, पत्र–पत्रिकाओं, प्रकाशित तथा अप्रकाशित शोध प्रबन्धों एवं अभिलेखों आदि से है, जिनके अध्ययन से अनुसंधानकर्ता को अपनी समस्या के चयन, परिकल्पनाओं के निर्माण, अध्ययन को आगे बढ़ाने में सहायता मिलती है।

बिना सम्बन्धित साहित्य के अध्ययन से शोध कार्य अन्धे के तीर के समान होती है क्योंकि जब तक यह ज्ञान न हो कि इन क्षेत्र में कितना काम हो गया है, किस विधि से कार्य किया और क्या निष्कर्ष निकले तब तक शोध कार्य की कोई भी रूप रेखा नहीं बनाई जा सकती है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि सम्बन्धित साहित्य का शोध कार्य से घनिष्ठ संबध है क्योंकि यह शोधकर्ता को अनावश्यक पुनरावृत्ति से बचाना है, अब तक उस क्षेत्र में हो चुके कार्य की सूचना देता है, समस्या के अध्ययन में सूझ पैदा करता है, समस्या के सीमांकन में सहायता करता है। इसका सबसे बड़ा लाभ यह है कि यह अध्ययन विधि में सुधार कर श्रम की बचत करता है। अनुसंधानकर्ता में आत्मविश्वास पैदा करता है। शोधकर्ती ने निम्न शोध का अध्ययन किया है। यहां पर शोधकर्ती का अध्ययन विषय ''भारतवर्ष में मिशनरी शिक्षा : योगदान तथा वर्तमान समय में उपादेयता'' का अध्ययन करना है और इससे पहले इस प्रकार के विषयों पर अध्ययन हो चुका है जिसका शोध कार्य करने से पहले अध्ययन किया जा चुका है।

जोसफाइन,एस० (१९५२) में बम्बई के प्रान्तों में कैथोलिक शिक्षा पर अपना शोध कार्य किया –

शिक्षा का मुख्य उद्देश्य –

शिक्षा का मुख्य उद्देश्य विद्यालयों द्वारा अथवा अन्य संघीय एजेंसियों के सहयोग से कैथोलिक के शिक्षा कार्यों का सम्पूर्ण परीक्षण करना था जो कि बम्बई के प्रान्तों में थे।

इन सबकी जानकारी व्यक्तिगत तौर पर संस्थानों का दौरा करके इकट्ठी की गई है या फिर पत्राचार द्वारा एवं बम्बई के कैथोलिक परीक्षा नियंत्रक से सम्पर्क कर की गई है। भारत के ऐतिहासिक अनुसंधान संस्थान जो कि सेंट जेवियर कालेज से जुड़ा है और बम्बई तथा पूना के अनुभागों द्वारा भी जानकारी एकत्रित है। इन ऐतिहासिक निरीक्षणों के परिणामस्वरूप यह निर्णय लिया गया है कि सोलहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में कैथोलिक शिक्षा की शुरूआत सर्वप्रथम बेसिन, सालसेटी केरान्या एवं चाले में हुई थी। यह लगता था भलीभॉति तरक्की करेगी किन्तु अठारहवीं शताब्दी के पहले पचास वर्षों में कैथोलिक स्कूलों का अस्तित्व समाप्त होने लगा। जो विद्यालय रह गये उनकी भी स्थिति लगभग एक शताब्दी तक चिन्ताजनक बनी रही। अठारहवीं शताब्दी के अन्त में बम्बई के नवीन उच्च स्तरीय विद्यालयों द्वारा कुछ मात्रा में बल डाला गया और उन्नीसवीं शताब्दी के पहले पचास वर्षों में और भी बढ़ोत्तरी हुई। शुरूआत में यह तरक्की कुछ धीमी थी किन्तु १८५० तक ये विद्यालय फिर प्रगतिशील हो गये।

सन् १८५८ में जब डा० हार्टमैन की शासन पद्धति का अन्त हुआ तब प्रगतिशील अनाथालयों एवं विद्यालयों की स्थापना हुई। इनके अलावा अन्य विद्यालयों का या तो पुनर्निरीक्षण हुआ या फिर नये शुरू किये गयें। पुराने विद्यालयों को नवीन विद्यालयों द्वारा विस्थापित किया गया। इसके अतिरिक्त जीसस और मैरी के ननों द्वारा छात्राओं के विद्यालय भी खोले गये। साथ उच्च शिक्षा के संस्थानों ने प्रयोगशाला का प्रबंध इत्यादि जैसे अनेकों परियोजनाओं पर कार्य प्रारम्भ किये गये एवं बढ़ाये गये। विद्यालयों की गिनती बिना किसी रूकावट के बढ़ती गई ओर इसके साथ ही सेंट जेवियर कान्वेंट, पैरेल कान्वेंट, लड़कियों के लिए अनाथालयों एवं स्कूलों की स्थापना पूना एवं बांद्रा में की गई। इस समय तक सभी महत्वपूर्ण जगहों में जैसे बम्बई, सालसेअ इत्यादि और अन्यत्र जगहों पर प्राथमिक विद्यालय उस समय तक पूर्ण विकास कर चुका था और जल्दी ही वह हाईस्कूल बनने वाला था। धारवाड़ एवं बेलगांव में भी पूर्ण एवं सुचारू रूप से स्थापित विद्यालय थें। तब संगठन के युग की शुरूआत हुई। इस युग में सभी कैथोलिक विद्यालयों से अधिक प्रसिद्ध एक अच्छे विद्या के कार्यक्रम एवं परीक्षा में अच्छे परिणाम पाने वाले विद्यालयों की शुरूआत हुई। यह सब कैथोलिक विद्यालयों में प्रचलित था जिसमें कि सामाजिक कार्य होते थे कि अपरोक्ष रूप से इसी शिक्षा का प्रसार करते थे जो कि अन्य शिक्षा संस्थानों की स्थापाना, सामाजिक एकीकरण एवं मानवता को आचरण प्रदान करती थी जिसमें कि प्रसिद्ध संस्थान थे।

डाफ और म्यूट के संस्थान सेंट विसेंट का, पाल का सामाजिक संस्थान और इसी प्रकार के अनेक विद्यालय जो गरीबों के लिए खोले गये थे। दक्षिण में सेंट पाल और सेंट जोसफ, बेलगांव में पुर्नविचार किये गये। इनके अतिरिक्त भुसावल, शोलापुर, हुबली, पंचगनी और अन्य जगहों पर भी नये संस्थान खोले गये। सन् १६०६ के अन्तिम दिनों में शिक्षा एवं सामाजिक गतिविधियों में आगे बढ़ने पर लगातार प्रोत्साहन दिया जाने लगा। अगले काल में १६०६ से १६२५ तक प्रथम विश्वयुद्ध के दुष्परिणाम के कारण लेखक के अनुसार कैथोलिक ज्ञान का प्रसार मंद गति से हुआ। सन् १६०७ से १६१६ तक का समय गुजरात में स्कूलों की संख्या में वृद्धि, अग्निपादा में एक नये महिला प्रशिक्षण संस्थान खोलने का साक्ष्य है। पारेल जेकाब सर्कल बिलासिझ रोड, वुडहाउस रोड वाडाला तथा अन्य जगहों पर पहले से खुले विद्यालयों के साथ अनेकों अन्य विद्यालय खोले गये। इनके अतिरिक्त माउन्ट पेजर अनाथालय, सेंट कथेरीन होम तथा नार्मल स्कूल भी खोले गये। सन् १६२५ से १६४५ तक के काल के अन्त तक वहां छात्रों के लिए बीस विद्यालय तथा छात्राओं के लिए सत्ताइस विद्यालय, एक विश्वविद्यालय (सेंट जेवियट्स कालेज), अनेक प्रशिक्षण संस्थान और कक्षायें, अपंगो के लिए संस्थान और निराश्रित बच्चों के लिए अनेक संस्थान वं छात्रों तथा छात्राओं के लिए विद्यालय भी खोले गये।

ग्रामीण क्षेत्रों में भारतीय भाषाओं के माध्यम वाले विद्यालय खोले गये। लेखक के अनुसार पादरियों ने प्रशंसनीय उत्साहपूर्वक तथा सुरक्षापूर्वक अपने पूरे

सामर्थ्य से इन विद्यालयों में शिक्षा देते थे। उन्होंने शैक्षिक, सामाजिक तथा आर्थिक क्षेत्रों के गांवों का उद्धार किया। मुख्यतया महरों, कत्कारिस वार्लिसा आदि पिछड़ी जातियों के लिये कार्य किया। अपंगों तथा निराश्रितों के लिए उदार संस्थान भी खोले गये। अनेक अनाथलयों तथा डाफ आफ मुटुज सुनियोजित संस्थान कैथोलिक सिद्धान्तों का अनुसरण करते थे। इतना होते हुए भी कई कैथोलिक संस्थान मुख्यतया गरीबों की शिक्षा को प्रोत्साहित करते थे। अनेक कैथोलिक बच्चे शिक्षा से वंचित थे क्योंकि अध्यापन के लिए पूर्व स्थापित विद्यालयों एवं संस्थानों में कमरों की कमी थी। ऐसे बच्चों को शिक्षा प्रदान करने के लिए कई प्रयास किये गये। लेखक के अनुसार कैथोलिक समुदाय ने शिक्षा प्रसार में अपनी पूरी ताकत और साधन लगा दिया।

मैनुअल, एस०वी० फेरोज, तथा राय एस० ने कोयम्बटूर जिले में मैट्रिक विद्यालयों के छात्रों की सामाजिक आर्थिक स्थिति पर शोध कार्य किया। श्री आर०के०मिशन विद्यालय (१६६०) ने भी इसी विषय पर शोध कार्य किया था। इस परियोजना के उद्देश्यों में उन्होने मैट्रिक विद्यालयों के छात्रों के सामाजिक, आर्थिक तथा अन्य सम्बन्धित क्षेत्रों में स्थिति का पता लगाया। छात्रों के सामाजिक, आर्थिक स्थिति के बीच सम्बन्ध तथा उनकी शैक्षिक प्रगति पर शोध किया।

उन्होने सन् १८६१ के नमूनों पर अध्ययन किया। उन्होने ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्र के पैंतालिस विद्यालयों के चौथी कक्षा के छात्रों को लिया जिसमें

शहरी क्षेत्र से ६६० घटनाओं को तथा ग्रामीण इलाकों से ३४० घटनाओं का अध्ययन किया। अन्य क्षेत्र जिनमें अध्ययन किया गये ये थे माता–पिता की शिक्षा, आय, व्यवसाय तथा विद्यालयों से घरों तक की दूरी। एक विस्तृत प्रश्नावली अनुसंधान पर आधारित तैयार की गई।

इस प्रकार के अध्ययन का यह अध्ययन का यह निष्कर्ष निकला कि शहरी क्षेत्रों के परिवारों का औसतन ग्रामीण क्षेत्रों के परिवारों से उंचा था तथा माता–पिता एवं अन्य रिश्तेदारों के मिलने वाली शैक्षिक सहायता ग्रामीण संगठन की शहरी संगठन से अधिक थी। वहां पर अशिक्षित परिवारों के अधिकतर बच्चों में अच्छे अंक प्राप्त किये। शिक्षित परिवारों के अधिकतर बच्चों में अच्छे अंक प्राप्त किये। शिक्षित परिवारों से आये विद्यार्थी भी परीक्षाओं में अच्छे अंक प्राप्त करते थे। अभिभावकों की आय तथा छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि से सम्बन्धित विषयों पर कान्टीजेन्सी, कैफेन्ट की गणना की गई। शहरी समुदायों के लिए उनकी आय, शिक्षा के क्षेत्र में उपलब्धि के लिए प्रमुख तत्व माना गया।

आय का शिक्षा से सम्बन्ध ग्रामीण क्षेत्रों में कम था। छात्रों एवं छात्राओं के प्राप्तांक प्रतिशत की तुलना की गई जो विभिन्न व्यवसायों से थी। इससे यह पता चला कि खेती करने वाले निम्न आय वर्ग के लोग तथा मजदूर अपनी लड़कियो को विद्यालय भेजने से असंतुष्ट थे। ग्रामीण क्षेत्रो में किसानों में यह असंतोष शहर के मजदूरों से ज्यादा था। अलग–अलग व्यवसाय के समुदायों की

औसत उपलब्धियां की तुलना की गई और पाया गया कि व्यवसायिक वर्ग के बच्चे उच्च तथा मजदूरों के बच्चे निम्न अंक प्राप्त करते थे।

अधिकतर शिक्षकों के बच्चे शिक्षा का व्यवसाय ही पसन्द करते थे। इसी प्रकार लोहारों अथवा मैकेनिक के बच्चे इंजीनियर बनना चाहते थे तथा क्लर्कों के बच्चे आफिसर बनना चाहते थे। कुल नमूनों में आधे से अधिक बच्चे गोरों के व्यवसाय पसन्द करते थे। व्यवसायों का क्षेत्र शहरी बच्चों के अनेक प्रकार के थे। विद्यालय से धर तक की दूरी ग्रामीण बच्चों की शिक्षा प्रगति में बाधक थी। विद्यालयों तक की दूरी तथा अंग्रेजी एवं गणित में शहरी बच्चों में अधिक उपलब्धि ली और यही कुछ सीमा तक ग्रामीण बच्चों के लिए भी सत्य था। शहरी बच्चे ग्रामीण बच्चों की अपेक्षा सार्वजनिक रूप से अधिक मुक्त थे। शहरी लड़के एवं लड़िकयों के पास बिजली की अधिक सुविधा थी। अधिकतर छात्रों के पास सुविधा पूर्वक रहने की तथा उनके घरों में पढ़ने की मेजों की कमी थी। सिनेमा जाने की घटना शहरी बच्चों और ग्रामीण बच्चों में एक जैसी थी जबकि छात्रों में छात्राओं की अपेक्षा अधिक थी। अंग्रेजी में ग्रामीण तथा शहरी बच्चों को कठिनाई होती थी। तमिल उन्हें आसान लगती थी।

बंगाल प्रेसीडेन्सी के उड़ीसा विभाग के अध्ययन का मुख्य लक्ष्य शिक्षा की नई नीतियों का लागू करना था। इसकी सामग्री नेशनल आर्चीव्स भारत (नई दिल्ली) से इकट्ठा की गई थी। इसके अलावा रिपोर्ट और अखबार की मदद ली गई थी। इस अध्ययन की मुख्य उपलब्धियां थीः–

बैपलिस्ट के महान कार्यों ने उड़ीसा में पाश्चात्य शिक्षा की शुरूआत की।

वे लोक स्त्री शिक्षा तथा प्रेस की स्थापना और पाठ्य पुस्तक बनाने की तरह ज्यादा उत्साहित थे।

बंगाल वासियों के उड़ीसा आने से ब्रिटिश शिक्षा नीति प्रभावित हुई।

उड़ीसा वासियों को राज्य के प्रशासनिक कार्यों से वंचित रखा।

उच्च शिक्षा में उड़ीसावासी सुरक्षित नहीं थे।

सरकार की भिन्न नीतियां एक ही संस्थान तक सीमित नही थी।

उड़ीसा के गांव के लोगों के लिए शिक्षा जरूरी हो ऐसा करने में सरकार सफल नहीं हुई। लम्बे समय के लिये शिक्षा बढ़ाने के बाद ब्रिटिश प्रशासन कुछ शिक्षा संस्थान खोले।

उड़ीसा, बंगाल प्रेसीडेंसी का बाहरी हिस्सा था इसलिए यहां पर शिक्षा नीतियां मन्द थी।

१६२६ और १६३५ एक्ट ने अपने विचार व्यक्ति करने का कुछ मौका दिया।

पाश्चात्य शिक्षा ने लोगों की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक हालत बदलने में मदद किया।

* शुक्ला, एस०सी० (१६५८) ने भारत के अंग्रेजी शासन में शैक्षिक विकास (१८४५ से १६४७) पर अनुसंधान कार्य किया। इसके निम्नवत परिणाम प्राप्त हुए।

---

* शुक्ला, एस०सी० (१६५८)– एजूकेशन डेवलपमेंट इन ब्रिटिश इण्डिया (१८४५–१६४७) डेलही यूनिवर्सिटी

➢ सरकार के माध्यम से शिक्षा को रूप देने का कारण।

➢ भारत में मध्यम वर्ग की शिक्षा के माध्यम से पाश्चात्यीकरण करने की अंग्रेजों की इच्छा जिससे सरकार और प्रजा की बीच अच्छे सम्बन्ध स्थापित हो जायें।

डा० शुक्ला ने प्रारम्भ में अंग्रेजी शिक्षा को धर्म प्रचार का माध्यम बनाकर अप्रत्यक्ष रूप से भारतीयों में राष्ट्रीय चेतना को उत्पन्न किया जिससे सरकार की नीतियों के प्रति समालोचनात्मक दृष्टिकोण का विकास हुआ।

गुमास्था, बी०के० (१६६६) ने ईसाई मिशनरी इंस्टीट्यूट का भारतीय शिक्षा क्षेत्र में योगदान (१८००–१६००) विषय पर कार्य किया। इनकी शिक्षा भारत में ऐतिहासिक मिशनरी शिक्षा पर मिशनरी शिक्षा तक ही सीमित थी। इनकी शिक्षा केवल मद्रास, बंगाल और बम्बई के प्रवर की मिशनरी शिक्षा तक ही सीमित थी। उन्होने अनुसंधान के ऐतिहासिक तरीके अपनाये थे। शोध कार्य से निष्कर्ष निकलता है कि १८०० से १६०० तक के सालों की मिशनरी शिक्षा में निम्नांकित तथ्यों पर जोर दिया गया था।

⇨ अपनी मातृभाषा में शिक्षा के संस्थानों को स्थापित करना तथा वहां रहने वाले स्कूलों एवं अनाथालायों की स्थापना करना मिशनरी शिक्षा का उद्देश्य था।

⇨ अंग्रेजी शिक्षा का विस्तार करना।

⇨ पश्चिमी शिक्षा एवं विज्ञान से लगाव का विस्तार।

⇨ शिक्षा के सिद्धान्तों में बदलाव।

⇨ शिक्षा में अत्यधिक विस्तार।

⇨ सह–शिक्षा की शुरूआत।

⇨ देख–रेख की परम्परा की शुरूआत।

⇨ बिना किसी छुआ–छूत के भेदभाव के शिक्षा की शुरूआत करना।

⇨ अध्यापाकों के लिए प्रशिक्षण का विकास करना।

⇨ महिलाओं की शिक्षा की शुरूआत।

⇨ प्रेस की स्थापना।

⇨ समाचार पत्रों एवं पत्रिकाओं का सम्पादन।

⇨ धार्मिक ग्रन्थ बाइबिल का अनेक भाषाओं में अुनवाद।

⇨ भारतीय भाषाओं की वैज्ञानिक शिक्षा के लिए ध्येय।

⇨ भारत के धार्मिक ग्रन्थों का अनुवाद।

⇨ भारत के समाज का आधुनिकीकरण।

उपुर्यक्त अनेक अच्छाइयों के साथ ही मिशनरी शिक्षा के अनेक अवगुण भी थे।

⇨ ईसाई धर्म शिक्षा पद्धति का केन्द्रीयकरण ।

⇨ अंग्रेजी शिक्षा का भारतीय वातावरण को रास न आना ।

⇨ सामाजिक वर्गीकरण का उदय ।

⇨ अंग्रेजी माध्यम में शिक्षा का दोष ।

⇨ मिशनरी शिक्षा पद्धति में राष्ट्रीय भावनाओं का न होना ।

⇨ असुरक्षित राजनीति का विकास ।

⇨ विदेशों में भारत के बारें में गलत धारणाएं।

⇨ प्राचीन संस्कृति एवं पश्चिमी संस्कृत में एकीकरण का अभाव ।

⇨ दोषपूर्ण इरादों का होना ।

⇨ धर्म को बदलने का दोषपूर्ण तरीके ।

* राज, ए०एस०(१९६६) ने सन् १९६६ में "एजूकेशनल पॉलिसी ऑफ द गर्वन्मेन्ट ऑफ इन्डिया ड्यूरिंग द ब्रिटिश पीरियड" पर शोध कार्य किया।

उन्होने ब्रिटिश काल में भारत में सरकार द्वारा शिक्षा के क्षेत्र के लिए गये राजनीतिक फैसलों पर शोध कार्य किया था। भारत सरकार के नाम से प्रसिद्ध वह भारत की सर्वोच्च सरकार थी। उन्होने अपने शोध कार्य में पुस्तकालयों का भी अध्ययन किया। इसके अतिरिक्त कई लेखों, अभिलेखों छपे पत्रों, प्रमाणों का भी सहयोग लिया। अपने शोध कार्य में भारतीय शिक्षा, समाचार पत्र तथा दैनिक पत्रों को भी प्रयोग में लाया गया। उन्होने अपने शोध कार्य में शैक्षिक नीतियों में आई क्रान्तियों का भी उल्लेख किया है। भारत में शिक्षा के प्रसार का मुख्य

---

* राज, ए०एस० (१९६६) "एजूकेशनल पॉलिसी ऑफ द गर्वन्मेन्ट ऑफ इन्डिया ड्यूरिंग द ब्रिटिश पीरियड" पी०–एच०डी० हिस्ट०, के०यू०, १९६६

उद्देश्य की पूर्ति के लिए औपचारिक शिक्षा का विस्तार किया। कई सरकारी संस्थाऐं भी अच्छी शिक्षा के नये मार्ग नही सुझा पाई। शिक्षा का व्यवसाय के अनुसार ही प्रसार किया गया।

जोसफ, ओ०एम० (१६७१), ने जबलपुर भाग की शिक्षा में ईसाई मिशनरी के योगदान पर विचार व्यक्त किया है । इनकी खोज के निम्नलिखत उद्देश्य थे:

शिक्षा के क्षेत्र में ईसाई मिशनरी के योगदान की ऐतिहासिक चर्चा। और खासतौर पर जबलपुर विभाग और भारत की शिक्षा पर उसका क्या और कितना असर पड़ा। इन सभी विषयों पर अनेक जगहों से आंकड़े एकत्रित किये गये। ये आंकड़े अलग–अलग लिये साक्षात्कार एवं निरीक्षणों पर आधारित थे। उनके द्वारा की गई खोजें निम्न प्रकार से हैं:–

⇨ ईसाईयों के प्रयासों के फलस्वरूप भारत से डेढ़ सौ से अधिक कालेजों, दो हजार एक सौ सतहत्तर हाईस्कूलों, दो सौ चौदह तकनीकी शिक्षा के विद्यालयों, एक सौ तिरपन अध्यापक प्रशिक्षण कालेजों एवं विद्यालयों, लगभग छः सौ बीस चिकित्सालयों, सड़सठ दवाखानों, छियासी कुष्ठ केन्द्रों, सात सौ तेरह अनाथालयों, सत्तासी वृद्धाश्रम, छः सौ इक्यासी छात्रावासों एवं जन कल्याण संगठनों दो सौ पचहत्तर गिरजाघरों, चवालिस कृषि विवादों को सुलझाने वाले, सत्ताइस उद्योग–धन्धे और नेत्रहीन लोगों के लिए संस्थान और बहरों अपंग लोगों के लिए जबलपुर

विभागों में संस्थानों की स्थापना की गयी। इनके अलावा ईसाई मिशनरियों ने सत्ताइस प्राथमिक विद्यालय, बारह माध्यमिक विद्यालय, पन्द्रह उच्च माध्यमिक विद्यालय, दो कालेजों और एक प्रशिक्षण केन्द्र की भी स्थापना की। इनके अलावा अनेक अनाथालयों, अस्पतालों, दवाखानों एवं छात्रावासों को भी चलाया गया जिसमें बीस हजार दो सौ छात्र शिक्षा एवं प्रशिक्षण पा रहे थे।

⇨ ईसाई गिरजाघर हमेशा अच्छी ईसाई शिक्षा एवं उनके मूल्यों का अपने बच्चों में विकास पर जोर देते थे। वे उन्हें अच्छी से अच्छी शिक्षा देना चाहते थे। ऐसा इसलिए था क्योंकि वे चाहते थे कि उनकी आने वाली पीढ़ी अपने ईश्वर में पूरी आस्था रखे और गिरजाघर के सिद्धान्तों पर पूर्ण रूप से अमल करें, उसे पहचाने और उन्हीं के दिशा निर्देशों के अनुसार अपना भविष्य तय करें।

⇨ उनकी शिक्षा का उद्देश्य ईसाई धर्म को न मानने वालों का धर्म परिवर्तन करना नहीं था।

⇨ ज्यादातर ईसाई संगठन अपने द्वारा चलाये जा रहे विद्यालयों में शिक्षा का स्तर ऊंचा रखते थे साथ ही उनका संगठन योजनाबद्ध होता था और उंची शिक्षा वाले विद्यार्थियों पर विशेष ध्यान दिया जाता था।

⇨ ये ईसाई मिशनरी केवल दयावश भारत की सेवा नहीं करते थें रोमन, कैथोलिक, पुजारी, भाई, एवं बहने अपनी सेवायें भारतीयों को बिना किसी

इनाम के प्रदान करते थे। गास्पेल द्वारा अपनी शिक्षा का सीधा प्रचार एक बड़ी समस्या बन गया था जिसके कारण अशिक्षा एवं अज्ञानता ज्यादातर भारतीय समूहों में फैलने लगी। तब मिशनरियों ने अपनी शिक्षा के विस्तार के लिए यह तय किया कि गास्पेल के उद्देश्यों को धीरे–धीरे आसान रास्तों द्वारा शिक्षित व्यक्ति की मदद लेकर इस शिक्षा का प्रचार किया जायेगा। इस सम्बन्ध में अनेक रास्ते तय किये गये और इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये अपनी मातृभाषा के स्कूलों को शुरू किया गया। मिशनरी अंग्रेजी शिक्षा एवं स्त्री शिक्षा के नेता थे। इस तरह मिशनरी ने अंग्रेजी शिक्षा पद्धति की स्थापना की नींव भारत में डाल दी। वे लोग जबलपुर विभाग के एंग्लों इंडियन शिक्षा, जातीय लोगों की शिक्षा एवं पिछड़ी जातियों के व्यक्तियों के नेता होते थे। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में यूरापीय एवं एंग्लो इंडियन समुदायों के व्यक्तियों की जरूरतों को मुख्यतया पूर्ण करने के लिए स्थापना की गई। जैसे–२ समय बीतता गया यूरोपीय एवं एंग्लो एण्डियन अफसरों के नौकरों एवं उनके बच्चों के लिए उनकी अपनी मातृभाषा के स्कूल खोले गये। बीसवीं शताब्दी में ज्यादातर लोगों के मौदला जिलें में स्थानान्तरण से प्राथमिक शिक्षा प्रभावित हुई और मिशनरी के नब्बे प्राथमिक विद्यालयों में से वर्तमान में केवल चौबीस विद्यालय ही जिंदा है और इन विद्यालयों ने पिछड़ी जातियों के लिए बहुत कुछ किया है।

⇨ हाईस्कूलों द्वारा ईसाई धर्म ने सामाजिक स्तर को पहचानने के रास्तों को जगाया है और रोजगार के नये दरवाजे खोल दिये हैं।

* गोयल, वी०आर० (१६७३) ने "एजुकेशन ऑफ डिप्रेस्ड क्लासेज़ इन इण्डिया ड्यूरिंग द ब्रिटिश पीरियड" पर अनुसंधान कार्य किया शोध के साथ निम्न तथ्य स्पष्ट है कि मध्य युग की समाप्ति के बाद भारतीय समाज की प्रमुख कुरीतियां जिसमें जातिप्रथा, अस्पृश्यता प्रमुख थी। आधुनिक युग में इन कुरीतियों के उन्मूलन, साक्ष्य और पिछड़ी जाति समझे जाने वाले दलित वर्ग में शैक्षिक विकास हेतु प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से सुधारात्मक कार्य हुए तथा उनकी शिक्षा हेतु महत्वपूर्ण कदम उठाये गये साथ ही मिशनरी शिक्षा का प्रभाव भी परिलक्षित किया।

* सैनी, एस०के० (१६७५) ने शोध कार्य हेतु निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किये।

१६२१–१६४७ के ब्रिटिश शासन के शिक्षा विकास की रिपोर्ट बनाना।

इन्होने शिक्षा के विस्तार से संबंधित विषयों के अनेक पहलुओं जैसे आर्थिक, सामाजिक स्थित तथा राजनैतिक पृष्ठभूमि आदि आदि का मूल्यांकन किया और उन्हें शिक्षा के ऐतिहासिक तत्वों में स्थापित किया।

---

* गोयल, वी०आर०(१६७३) "एजुकेशन ऑफ डिप्रेस्ड क्लासेज़ इन इण्डिया ड्यूरिंग द ब्रिटिश पीरियड" डेलही यूनिवर्सिटी

* सैनी, एस०के० (१६७५), "द सोशियो, इकोनॉमिक एण्ड पॉलिटिकल फैक्टर्स इन द डेवेलपमेंट ऑफ एजूकेशन इन ब्रिटिश इण्डिया ड्यूरिंग (१६२१–१६४७), एम०एस०यू०

सन् १६२७ से १६४७ के मध्य सरकार द्वारा लागू की गई शिक्षा नीतियों जिसमें सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक क्षेत्र प्रमुख थे, इन पर अपना शोध कार्य किया। उन्होने अपने शोध कार्य में ऐतिहासिक सर्वेक्षण को प्रमुख रूप से तत्वों को एकत्रित किया। ये शैक्षिक प्रमाण १६२१ से १६४७ के मध्य के थे। उन्होनें देश के अनेक भागों से विशिष्ट शिक्षा विदों, समाज शास्त्रियों तथा इतिहासकारों से अनौपचारिक साक्षात्कार भी लिए।

उनके शोध का मुख्य परिणाम यह हुआ कि इन क्षेत्रों में शिक्षा मुख्यतया राजनीति से प्रभावित थी और विद्यालयों की गणना में भी वृद्धि हुई। साथ ही अनेक कालेजों एवे विश्वविद्यालय भी स्थापित हुए। जब भी मिशनरी के ब्रिटिश सरकार से मतभेद होते शिक्षा सर्वप्रथम प्रभावित होती थी जिसके कुछ कारण थे जातिवाद, लोगों की गरीबी, सामाजिक तथा धार्मिक आन्दोलन, नेतावाद आदि। नये राजनैतिक, आर्थिक तथा प्रशासनिक बदलावों के कारण धीरे–धीरे जातिवाद अपना स्थान खोने लगा। शिक्षा आर्थिक सुधारों का स्रोत थी। गरीबी ही केवल शिक्षा में बाधक थी। औपचारिक शिक्षा का देश में औद्योगिक तथा कृषि से सम्बन्ध अत्यन्त सीमित था।

* गोयल, बी०आर० (१६७७) के अध्ययन का मुख्य उद्देश्य ब्रिटिश काल

---

* गोयल, वी०आर० (१६७७) "ब्रिटिश काल में भारत में निम्न वर्गों की शिक्षा" पृ.सं. ४८, ए०एस०यू०

मे निम्न वर्ग के लोगों की शिक्षा के प्रसार को प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करने वाले प्रमुख घटनाओं अथवा तथ्यों का पता लगाना था। इस ऐतिहासिक अनुसंधान में कई शैक्षिक प्रमाणों, गृह तथा शिक्षा विभाग की क्रियाओं, अनेक कालों में शिक्षा में उन्नति के प्रमाणों, अनेक कमेटियों तथा कमीशनों के प्रमाणों, सामग्री प्रमाणों के अतिरिक्त अन्य किताबो, लेखों तथा अन्य अनुसंधान प्रमाणों का भी प्रयोग किया गया है।

यह पाया गया कि ब्रिटिश काल में पूर्व निम्न वर्ग के लोग सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा शैक्षिक क्षेत्रों में बराबरी से पिछड़े हुए थे। उन्नीसवीं शताब्दी में शुरू किये गये। समाज सुधार के कार्यक्रमों ने निम्न वर्गो के उद्धार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसी प्रकार अनेक सामाजिक संगठन भी निम्न वर्गों के शिक्षा के प्रसार में लगे थे। इस कार्य को पूरा करने के लिए इन संगठनों ने सम्मेलनों का भी आयोजन किया तथा निम्न वर्गों के उत्थान के लिए शिक्षा को प्रमुख हथियार बनाया। इस प्रकार के प्रगति कार्यकम सभी धार्मिक आडम्बरों से मुक्त थे। ब्रिटिश सरकार द्वारा शुरू किये गये सरकारी विद्यालय भी पूरी तरह धर्मनिरपेक्ष थे तथा इन विद्यालयों ने निम्न वर्गों के लोगों को मुफ्त वेतन, छात्रवृत्ति, अनुदान आदि भी दिये जाते थे। इसके अतिरिक्त शिक्षा संस्थानों एवं अन्य सेवाओं में निम्न वर्गों के लिए आरक्षण भी होता थां जिससे इन वर्गों के शिक्षा प्रसार में एक महत्वपूर्ण कदम था। ब्रिटिश काल में गैर सरकारी संस्थाओं तथा व्यक्तिगत आधार पर किये गये कार्यकमों में निम्न वर्गों

के उत्थान मे विशिष्ट भूमिका निभाई। महात्मा गांधी, ज्योतिबा फूले, डा० बी०आर० अम्बेडकर एवं उनके अन्य साथियों ने निम्न वर्ग की शिक्षा के प्रसार में अग्रणी भूमिका निभाई।

* इपेन, के०वी० (१६८१), ने "चर्च मिशन सोसाइटी का केरल में शिक्षा के प्रसार में योगदान" पर अध्ययन किया गया है। इस अध्ययन के मुख्य उद्देश्य थे: –

- प्राथमिक, माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा के क्षेत्र में चर्च मिशन सोसाइटी के योगदान का अध्ययन।
- नारी शिक्षा, निम्न वर्गों तथा पहाड़ी जातियों की शिक्षा आदि में मिशनरी के कार्यों को अंकित करना।
- सी०एम०एस० द्वारा स्थापित संस्थानों के प्रकृति का सर्वेक्षण।
- सरकार तथा मिशनरी के बीच सम्बन्धों का सर्वेक्षण करना।
- ट्रावनकोर तथा कोचीन के राज्यों के लोगों के शैक्षिक, आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा धार्मिक कार्यों पर इस मिशन का असर।

प्राथमिक तथा माध्यमिक स्रोतों से अनेक तथ्य एकत्रित

---

* इपेन, के०वी०(१६८१), "चर्च मिशन सोसाइटी का केरल में शिक्षा के प्रसार में योगदान" के०यू०

किये गये तथा उनका लेख विभाजन किया गया है। प्राथमिक स्रोत जैसे कि सी०एम०एस० मिशनरी के कार्यों के विवरण पत्र चर्च मिशनरी इंटेलीजेन्स, सी०एम०एस० का घोषणा पत्र, लोगों के आन्दोलनों का सर्वेक्षण है। मद्रास चर्च, मिशनरी प्रमाण, ट्रावनकोर तथा कोचीन डायोसन प्रमाण, सी०एम०एस० डायरी, सी०एम०एस० कान्फ्रेंस प्रमाण तथा अन्य सी०एम०एस० पब्लिकेशन्स तथा सरकारी घोषणा पत्र भी मुख्यतया अध्ययन के-

-प्रयोग में लाये गये हैं। इसके अतिरिक्त अन्य सामग्री अथवा स्रोतों में गैर मिशनरी लेख भी लिए गये हैं।

कुछ विशाप्स के साक्षात्कार तथा दक्षिण अफ्रीका के चर्च के उच्च शिक्षा विदों तथा कुछ विशिष्ट विद्यार्थियों को भी इन तथ्यों को एकत्रित करने के लिए लगाया गया है। इस अध्ययन के लिए प्रमुख तरीका ऐतिहासिक विधि अपनाया गया है तथा इसके श्रोत आन्तरिक तथा बाहरी दोषारोपणों से पूर्ण है जिससे कि उसका सत्यापन तथा सही मूल्यांकन किया जा सके।

इसके प्रमुख विशेषताएं हैः –

१. चर्च मिशन सोसाइटी की स्थापना १७९९ में हुई थी। केरल में आधुनिक शिक्षा के प्रसार मं इंग्लैण्ड ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। सी०एम०एस० मिशनरी शिक्षा को सामाजिक क्षेत्र का महत्वपूर्ण हिस्सा है।

२. मिशनरी ने प्राथमिक शिक्षा का सर्वप्रथम प्रसार किया था। मिशनरियों ने प्राथमिक विद्यालयों की शुरूआत की जैसे कि थामस मार्टन

(१८१६–१८४०) का एक निश्चित कार्यक्रम था तथा उन्होनें सरल तरीके तथा कड़े निर्देश अपनाये थे।

३. साइरिन चर्च ने भी विश्वविद्यालय की स्थापना की परन्तु धीरे–धीरे इन विद्यालयों में छात्रों की संख्या बढ़ने लगी एवं अन्य प्राथमिक विद्यालयों की आवश्यकता हुई जिससे कि इन छात्रों को भी शिक्षा प्रदान की जा सके।

४. ये मिशनरियां केरल में आधुनिक माध्यमिक शिक्षा में अग्रणी थे। इनके अतिरिक्त चर्च मिशन सोसाइटी द्वारा अंग्रेजी उच्च विद्यालय भी स्थापित किये गये। अंग्रेजी तथा प्रादेशिक दोनों प्रकार की माध्यमिक शिक्षा प्रसिद्ध थी।

५. सी०एम०एस० ने केरल में सबसे प्राचीन उच्च शिक्षा संस्थानों की स्थापना की। कोट्य्यम के सीरियन कालेज का सम्पूर्ण विकास हो रहा था जब मिशनरियों ने उसका स्थान ले लिया।

६. सी०एम०एस० मिशनरियों की पालियों ने केरल में स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में सबसे प्रमुख थे। उनके द्वारा स्थापित किये गये छात्रावासों तथा विद्यालयों ने स्त्री शिक्षा तथा सहशिक्षा को प्रसिद्ध कर दिया।

७. मिशनरियों ने दास विद्यालयों तथा आवासीय विद्यालयों की स्थापना की जो मुख्यतया निम्न वर्गो के उत्थान के लिए थें। हेनरी बेकर ने पहाड़ी

जातियों के उत्थान तथा उनकी शिक्षा के लिए कार्य किया जो कि हिल एरियन्स के नाम से मशहूर था। सी०एम०एस० ने विशेष विद्यालयों जैसे कि औद्योगिक विद्यालय, शिक्षक प्रशिक्षण विद्यालय, किंडरगार्टन स्कूल, कम्प्यूनिटी विद्यालय तथा बहरे बच्चें के लिए विद्यालयों की स्थापना की जो सर्वाधिक प्रसिद्ध संस्थान थे।

८. केरल में मलयालम भाषा में सबसे पहला छपाईखाना खुलना, केरल में प्रथम मलयालम किताब का छपना, बाइबिल का मलयालम अनुवाद, मलयालम व्याकरण तथा शब्दकोष, मलयालम साहित्य एवं भाषा का विस्तार आदि भा सी०एम०एस० मिशनरी की ही देन है।

९. सरकार भी इन मिशनरियों के साथ सहयोग करती थी और जमीन एवं धन दान कर उनकी मदद करती थी। इसी प्रकार मिशनरियां भी शिक्षा का प्रसार कर सरकार को अपना सहयोग देती थी।

१०. मिशनरी के कार्यों ने केरल में लोगों की जिन्दगी में व्यापक बदलाव लाए जिसके फलस्वरूप केरल शिक्षा के क्षेत्र में सबसे अग्रणी हो गया।

* लूना०एच०,जे०वी०, (१९८६) एजूकेशन इन मिजोरम (१८९४–१९९७)

इसका ऐतिहासिक अध्ययन मुख्य रूप से ईसाई मिशन का रोल है। अध्ययन का

---

* एच०लूना, जे०वी० (१९८६) ''एजूकेशन इन मिजोरम'' (१८९४–१९९७)

मुख्य लक्ष्य शिक्षा की प्रगति की तुलना करना था। यह तुलनात्मक अध्ययन भारत में ब्रिटिश नीतियों के बारें था।

ऐतिहासिक सर्वे तरीका मुख्य रूप से अपनाया गया। पहले पहल यह अध्ययन आफिस लेखों, मीजो, व्यक्तिगत संबंध तथा पुरानी पीढ़ियों से बाचचीत के ऊपर था। कुछ मुख्य लक्ष्य थेः–

– मीजो में ब्रिटिश शासन के अन्दर पाश्चात्य शिक्षा की शुरूआत करना। यह इतनी जल्दी था कि यह कवल कुछ प्रजातियों पर नही नहीं बल्कि भारत के दूसरे लोगों के लिए भी था।

– विभिन्न बातें इस प्रगति के लिए जिम्मेदार थी। मिशनरी ने इस प्रगति के लिए मुख्य काम किया; वे विभिन्न क्षेत्रों में आगे थे जैसे स्त्री शिक्षा तथा प्रायोगिक विषय।

– मिशन के कार्यों से शिक्षा के प्रति सामान्य लोगों का लगाव बहुत था।

– मिशन के कार्यों से शिक्षा के प्रति सामान्य लोगों का लगाव बहुत बढ़ गया था।

– ईसाई धर्म तथा शिक्षा द्वारा मिजों समाज में एक महान बदलाव आया।

– मिशनरी के द्वारा लायी हुई शिक्षा की अपनी सीमाएं थी।

– मिशनरी ने मिजों की शिक्षा के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण कार्य किये जिसमें फलस्वरूप उनकी कोशिशों और सफलता की सम्मान दिया गया।

द्वितीय अध्याय

मिशनरियों के पूर्व शिक्षा के स्वरूप का अध्ययन

प्राथमिक शिक्षा

मद्रास प्रेसीडेन्सी में शिक्षा की दशा

बम्बई में शिक्षा की दशा

बंगाल में शिक्षा की दशा

पंजाब में शिक्षा की दशा

संस्थाओं के प्रकार

ज्ञानपीठ

देशी प्राथमिक विद्यालय

देशी पाठशालाएं

देशी शिक्षा

देशी पाठशालाओं की विशेषताएं

देशी शिक्षा की अवनति

देश की बढ़ती निर्धनता

राज्य की उदासीनता

अंग्रेजी शिक्षा का प्रचलन

शिक्षकों की दयनीय आर्थिक स्थिति

प्रशिक्षण संस्थाओं की कमी

देशी पाठशालाओं में उपयोगी विषयों की कमी

मिशनरियों के पूर्व शिक्षा के स्वरूप का अध्ययन

भारत में मिशनरियों के आगमन से पूर्व मुस्लिम शासकों का शासनकाल था। मुस्लिम शासकों ने भारतवर्ष के बड़े भाग पर अधिकार करके दीर्घ, अवधि तक शासन किया। इन मुस्लिम शासकों ने अपनी शासन व्यवस्था को सुदृढ़ करने हेतु इस्लामी संस्कृति एवं इस्लामी शिक्षा का भरपूर प्रचार तथा प्रसार किया। औरंगजेब द्वारा मुस्लिम शिक्षा के प्रचार के अन्तर्गत अनेक हिन्दू पाठशालाओं एंव मन्दिरों को नष्ट कर दिया गया परन्तु मुगल साम्राज्य के पतन के बाद मुस्लिम शिक्षा संस्थाओं को काफी आघात लगा तथा धनाभाव देश में व्याप्त अराजकता के कारण अनेक संस्थाएं बन्द हो गई। अर्थात मध्ययुगान्त काल में आधार पतन होते ही पश्चिमी देशों के बहुत से व्यापारी यहाँ के वैभव तथा सम्पदा से आकर्षित होकर पश्चिमी कोष्ठ के बन्दरगाहों पर आकर बसना आरम्भ कर दिया इनमें अंग्रेज, फ्रेंच, डेनमार्क तथा स्पेन के व्यापारी प्रमुख थे। इनकी कम्पनियों का व्यापार उत्तरोत्तर बढ़ता गया जिसके फलस्वरूप पारस्परिक ईष्या तथा प्रतिद्वन्दिता की भावना जागृत हो गयी आगे चलकर इस ईर्ष्या द्वेष ने संघर्ष का रूप धारण किया और इस संघर्ष के अन्त में अंग्रेजों को सफलता मिली। ब्रिटिश कालीन शिक्षा का युग ईस्ट इण्डिया कम्पनी के प्रयासों से ही प्रारम्भ होता है। इस काल से पूर्ण भारत वर्ष में शिक्षा की दशा अनिश्चित एवं अव्यवस्थित थी। इस समय सम्पूर्ण भारत वर्ष में देशी प्राथमिक पाठशालाऐं

पर्याप्त संख्या में विद्यमान थी। इन पाठशालाओं में एकांकी शिक्षा पद्धति का प्रचलन था। इसके अतिरिक्त मानीटर प्रणाली भी प्रचलित थी अर्थात शिक्षक की अनुपस्थित होने पर कक्षा के वरिष्ठ छात्र ही कक्षा में पढ़ाया करते थे। ऊंची कक्षाओं में केवल शिक्षक ही पढ़ाते थे। पाठशालाओं में हिन्दी, बंगला, संस्कृत, फारसी, अरबी तथा ऊर्दू भाषाओं के माध्यम से शिक्षा दी जाती थी। यद्यापि ये देशी पाठशालाएं शिक्षा का प्रचार करने में तो अवश्य लगी हुई थीं परन्तु इसकी आर्थिक दशा शोचनीय थी। पठशालाओं का संचलान करने के लिए धन का अभाव था। शिक्षकों को प्रशिक्षित करने की कोई व्यवस्था न थी। पाठशालओं के लिए सुन्दर भवन निर्माण का कोई प्रबन्ध न था अपितु तत्कालीन सरकार की शिक्षा के प्रति अत्यन्त उपेक्षापूर्ण नीति थी। इस सम्बन्ध में श्री ए०एन०बसु ने निम्न प्रकार से अपने विचार व्यक्त किए है।

"पाश्चात्य शिक्षा शास्त्रियों के मतानुसार, भारतवर्ष की देशी शिक्षा व्यवस्था का कोई महत्व न था तथा ब्रिटिश अधिकारी उसे समाप्त करने में ही उचित थे।"

प्रथमतः जो कुछ सूचनाएं प्राप्त हुई वे अधिकांशतः ब्रिटिश सीमाओं से सम्बन्धित हैं जो कि तत्कालीन भारत में एक सूक्ष्म भाग थे और शेष विस्तृत क्षेत्र जो कि भारतीय राजाओं के अधीन थे उनके विषय में कोई द्रुत सामग्री उपलब्ध नहीं है। दूसरे सम्पूर्ण ब्रिटिश राज्याधीन क्षेत्रों के विषय में भी हमें पूरी जानकारी उपलब्ध नहीं है। १८वीं शताब्दी में भारतीय शिक्षा का क्या रूप था। इसका वास्तविक ज्ञान प्राप्त करने के लिए उपयुक्त साधन उपलब्ध नहीं हैं।

१६ वीं शताब्दी के प्रारम्भ में अंग्रेजों द्वारा प्रचलित देशी शिक्षा व्यवस्था की जांच की गयी। मद्रास मे सर टामस मुनरो के आज्ञानुसार सन् १८२२ मद्रास, बम्बई तथा बंगाल में सर्वेक्षण कराया गया।

प्राथमिक शिक्षा

मद्रास प्रेसीडेंसी में शिक्षा की दशा :–

सर टामस मुनरो ने अपनी प्रेसीडेंसी में देशी शिक्षा का सर्वेक्षण करने के लिए अपने जिलाधीशों को आदेश दिया मुनरो का कथन है कि, 'अंग्रेजी शासन को भारत में मजबूत करने के लिए शिक्षा में रुचि लेना आवश्यक है'। प्रत्येक जिले के जिलाधीशों ने अपनी–अपनी आख्याएं प्रस्तुत किये जो कि इस प्रकार है:–

इतिहासकार मिल के अनुसार मद्रास के प्रत्येक गांव में एक प्राइमरी स्कूल था। परन्तु स्कूलों छात्रों की संख्या बहुत कम थी। इन आख्याओं में बिलारी और कनाड़ा जिलाधीशों द्वारा प्रस्तुत आख्या सर्वाधिक व्यापक तथा महत्वपूर्ण थी। इनके अनुसार जिले की कुल संख्या ६२८७५७ में ५:३ स्कूल थे जहां विद्यार्थियों की कुल संख्या ६६४१ थी अर्थात इसका तात्पर्य यह होता है कि प्रत्येक स्कूल में १२ विद्यार्थी थे। इन विद्यार्थियों की कुल संख्या में ६३६८ हिन्दू विद्यार्थी ६० बालिकाएं भी शामिल है और २४३ मुसलमान विद्यार्थी थे।

कैम्पबेल के अनुसार –

''एक स्कूल अंग्रेजी भाषा के लिए भी था तथा ४ तमिल के लिए २१ फारसी, २३ मराठी, २२६ तेलगू और २३५ कर्नाटकी के लिए थे। सभी विद्यालयों का पाठ्यक्रम

समान नहीं था। इसके अतिरिक्त केवल ब्राह्मण के लिए २३ संस्थायें थी। यहां पर उनको संस्कृत के माध्यम से अध्यात्म शास्त्र, ज्योतिष विद्या तर्कशास्त्र तथा विधि को कराया जाता था।

प्राथमिक विद्यालयों के मुख्य पाठ्य विषयों में किसी प्रकार का अन्तर नहीं था इस विषयों में रोचक कविताओं ओर उपदेशात्मक कहानियों को स्मरण करना, पाण्डुलिपियों को पढ़ना, दस्तावेज तैयार करना, और गणित के साधारण प्रश्नों को हल करना होता था।

विद्यार्थी प्रारम्भिक शिक्षा के लिए विद्यालयों में ५ वर्ष की आयु में प्रवेश करते थे और १४ या १५ वर्ष की आयु में उसे छोड़ते थे विद्यारम्भ के लिए जाने से पूर्व श्री गणेश जी की पूजा की जाती थी और एक समारोह का आयोजन किया जाता था। जब बालक विद्यालय में प्रथम बार पहुंचता था तब उसके हाथ पर विद्या की देवी "सरस्वती" का नाम लिखा जाता था। उसके फलस्वरूप ही पढाई आरम्भ की जाती थी।

विद्यालयों का कार्यक्रम ६ बजे प्रातः होता था तब सभी बालकों के आ जाने पर सरस्वती वन्दना होती थी। उसके पश्चात विद्यार्थी अध्ययन कार्य आरम्भ करते थे। विद्यालयों का दण्ड विधान बहुत कठोर था। अपराधी बालकों के लिए दण्ड निश्चित थे। इनमें कोड़े लगाना, बेंत मारना, छत से लटकाना तथा बैठक कराना था देर से आने आने वाले विद्यार्थियों को स्वास्थ्य वर्धक दण्ड मिलता था।

शिक्षण विधि –

शिक्षण विधि का प्रमुख अधार बालचर प्रणाली थी। विद्यालय के समस्त विद्यार्थियों को उनकी योग्यतानुसार वर्गों में बांट दिया जाता था। निम्न कक्षाओं की देख–रेख कक्षानायक ही करते थे और उच्च कक्षाओं का अध्यापन कार्य शिक्षकगण प्रत्यक्ष रूप से किया करते थे। वर्णाक्षरों का ज्ञान बालकों को बालू पर अक्षरों को उंगली से लिखने का अभ्यास कराया जाता था। इसके बात बड़े बड़े पत्तों पर लिखना सिखते थे। अक्षरों का ज्ञान प्राप्त हो जाने के बाद वह मात्रायें संयुक्त अक्षर स्वर और व्यंजन का ज्ञान प्राप्त करता था तथा पशुओं, स्थानों व्यक्तियों आदि के नाम लिखने का अभ्यास करता था। इसके उपरान्त बालक स्वर व्यंजन तथा आवश्यक गणित का भी ज्ञान प्राप्त करते थे वे अंकगणित में जोड़ना, घटाना, गुणा करना तथा भाग देना भी सीखते थे विद्यार्थियों को पहाड़ा, पौवे, पौने, सवैये का ज्ञान एक पंक्ति में खड़ा करके गा–गा कर याद कराये जाते थे।

शिक्षकों की दशा :–

शिक्षक निर्धन अयोग्य और अदीक्षित थे परिणाम स्वरूप शिक्षा का स्तर निम्न था योग्य व्यक्ति शिक्षक नहीं बनना चाहते थे। क्योंकि साधारण ६ या ७ रु० मासिक वेतन मिलता था। यह वेतन इतना कम होता था कि शिक्षकों को अपना जीवन निर्वाह करना कठिन हो जाता था। शिक्षा शुल्क विद्यार्थियों के लिए चार आने से लेकर आठ आने प्रतिमाह था जो कि बहुत से अभिभावकों के लिए असहनीय था।

उल्लेखनीय है कि इस दिशा में आरम्भिक शिक्षा के प्रसार में मिशनरियों का बहुत अधिक सहयोग प्राप्त हुआ व्यक्तिगत रूप में प्रयास में मिशनरियों का

बहुत अधिक सहयोग प्राप्त हुआ व्यक्तिगत रूप में प्रयास करने वालों में श्री पन्चयप्पा का नाम चिरस्मरणीय है यद्यपि प्रतिवर्ष सरकार की ओर से मद्रास प्रान्त में शिक्षा कार्यों के लिए पचास हजार रुपये की धनराशि प्रदान की जाती थी कि उसका अधिकांश भाग प्रतिवर्ष बचा दिया जाता था। परिणामतः इन अठारह वर्षों में इस प्रकार की कटौती से ३ लाख रुपये बचा दिये गये और मद्रास प्रान्त शिक्षा के इस क्षेत्र में बड़े क्षेत्र में बड़े दारूण स्थिति से गुजरता रहा।

बम्बई में शिक्षा की दशा :–

बम्बई के गर्वनर एल्फिस्टन ने १० मार्च १८२४ को प्रान्त के समस्त जिलाधीशों को आदेश दिया कि वे देशी शिक्षा की जाँच करके अपनी रिपोर्ट भेजे। ये रिपोर्ट १८२४–२५ में प्राप्त हुई पर उनसे प्रान्त की शिक्षा का पूर्ण ज्ञान न हो सका। अतः १८२६ में जिला न्यायाधीशों से दूसरी रिपोर्ट माँगी गई इस रिपोर्ट के आधार पर बम्बई प्रान्त की प्राथमिक शिक्षा इस प्रकार थी।

विद्यालयों एवं छात्रों की संख्या :–

विद्यालयों और छात्रों की संख्या बहुत ही कम थी। पूरे प्रान्त की ४६,८१,७३५ जनसंख्या के लिए १७०५ विद्यालय थे जिसमें ३५१५३ विद्यार्थी पढ़ते थे, प्रत्येक विद्यालयों में छात्रों की औसत संख्या १५ थी और न्यूनतम २ए तथा उच्चतम १५० थी इन आकड़ों में उस समय घर–घर प्रचलित व्यक्तिगत शिक्षा के आकड़े सम्मिलित नहीं थे।

गवर्नर की कौंसिल के एक सदस्य, प्रेण्डर गस्ट के मतानुसार ऐसा कोई भी छोटा या बड़ा गाँव नहीं था, जहाँ कम से कम एक स्कूल नहीं था। बड़े गाँवों में उससे अधिक तथा नगरों में और भी अधिक स्कूल थे जिनमें लिखने, पढ़ने और गणित की सस्ती शिक्षा दी जाती थी।

विद्यालयों के लिए प्रायः पृथक भवन नहीं होते थे। उनका शिक्षण कार्य प्रायः मंदिरों, शिक्षकों के घर पर या सम्मानित पुरुषों के निवास स्थानों पर किया जाता था।

शिक्षकों की दशा :-

अधिकांश शिक्षक ब्राह्मण थे। वे अध्यापन कार्य परम्परागत सम्मान के कारण न कि आर्थिक लाभ के लिए किया करते थे जिनका मासिक वेतन ३ रुपये से ५ रुपये तक था इस कम वेतन की पूर्ति हेतु कुछ सीमा तक अन्य प्रकार से हो जाती जाती थी। जैसे अपनी जाति के सहभोजों में उन्हें आमन्त्रित किया जाता था त्यौहारों पर उन्हें उपहार और अपने विद्यार्थियों के विवाह अवसरों पर दक्षिणा मिल जाती थी शिक्षक साधारणतः अयोग्य होते थे।

विद्यालयों के विद्यार्थी एवं शिक्षा काल :-

विद्यालयों में सभी जातियों के विद्यार्थी पढ़ते थे परन्तु हरिजन जातियों को विद्यालय जाना वर्जित था विद्यालयों में ब्राह्मण जाती के छात्रों की संख्या लगभग ३० प्रतिशत थी स्त्री शिक्षा का कहीं भी नामोनिशान नहीं था २५ स्कूल जिसमें विद्यार्थियों की संख्या १३१५ थी सरकार के द्वारा संचालित थे १६८० ग्रामीण स्कूल थे जिसमें

विद्यार्थियों की संख्या ३३८३८ थी शिक्षा का काल बालकों की ६ वर्ष की आयु से लेकर १४ वर्ष आयु तक होते थे।

पाठ्य विषय एवं दण्ड विधान :–

पाठ्य विषयों में लिखना, पढ़ना और साधारण गणित सम्मिलित थे। विद्यार्थियों को पहाड़े अद्दे आदि रटने पड़ते थे। जिससे कि वे गणित के प्रश्नों को मौखिक रूप से कर सके, दण्ड विधान कठोर था छात्रों को अनुशासन में रखने के लिए प्रायः कठोर दण्ड दिया जाता था।

शिक्षण पद्धति :–

उपर्युक्त रिपोर्ट के आधार पर देशी शिक्षा के स्वरूप तथा कार्य प्रणाली का व्यौरा प्राप्त होता है। शिक्षक ही विद्यार्थी को पढ़ाता था। इस समय भी नायक प्रणाली का प्रचलन था इसके अतिरिक्त एक अन्य पद्धति भी बम्बई में प्रचलित थी ज़िसका विवरण इस प्रकार से मिलता है–

जब एक बालक स्कूल में आता है, तत्काल ही वह अधिक योग्य विद्यार्थी के संरक्षण में रख दिया जाता है, उसका यह कर्तव्य होता है कि वह नए बालक को पाठ पढ़ाए और उसकी शिक्षा की प्रगति तथा आचरण को सूचना शिक्षक को दे। बालक का विभाजन कथानुसार न होकर दो–दो के जोड़ों में कर दिया जाता है प्रत्येक जोड़े में एक छोटा विद्यार्थी तथा एक बड़ा योग्य विद्यार्थी शिक्षक के रूप में होता है। इन जोड़ों के बैठने की व्यवस्था भी इस प्रकार की जाती है कि कुशल विद्यार्थी के पास ही नए विद्यार्थी को बैठाया जाता है। इस प्रकार जब

समान रूप से बहुत से विद्यार्थी ज्ञान प्राप्त कर लेते है तो उन्हें एक साथ इकट्ठा बैठाया जाता है। और वे सीधे शिक्षक द्वारा पढ़ाए जाते हैं। इस प्रकार शिक्षक के पास पर्याप्त अवकाश, स्कूल के निरीक्षण तथा प्रत्येक विद्यार्थी को व्यक्तिगत रूप से देखने को मिल जाता है।

बंगाल में शिक्षा की दशा :-

बंगाल प्राप्त में शिक्षा सम्बन्धी जाँच राज्य कर्मचारियों द्वारा नहीं की बल्कि, विलियम ऐडम नामक एक मिशनरी द्वारा की गई थी। इस विदेशी धर्म प्रचारकों संस्कृत और बंगाल का अध्ययन करने तथा राजा राम मोहन राय के सम्पर्क में आने से भारतीय शिक्षा के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हो गई थी। एडम ने दो पत्र विलियम वैटिंक को लिखें जिसके फलस्वरूप गवर्नर जनरल ने बंगाल में शैक्षिक सर्वेक्षण के लिए आदेश जारी कर दिया। उन्होंने इस कार्य के लिए एडम महोदय को ही १००० रु० प्रति माह के वेतन पर नियुक्त किया। एडम महोदय ने १८३५, १८३६, १८३८ ई० में क्रमशः ३ रिपोर्ट गवर्नर जनरल की सेवा में प्रेषित की।

एडम की प्रथम रिपोर्ट :-

एडम के अनुसार बंगाल और बिहार में देशी प्रारम्भिक स्कूलों की स्कूल संख्या १००००० है। भारतीय बालक जो कि पाठशाला भेजने की अवस्था में ५ वर्ष से ११ वर्ष तक है, उसका प्रतिशत कुल आबादी का १६ प्रतिशत है। इसलिए उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि ४०० व्यक्तियों में ६४ शिष्य ही स्कूल में जाने वाली

अवस्था में होगें इस प्रकार से लड़कियों को छोड़कर, ३२ लड़कों पर एक स्कूल की व्यवस्था थी। रिपोर्ट के आधार पर वसु ने लिखा है–"प्राथमिक शिक्षा जन साधारण के लिए भी यह एक ऐसा विशाल आयोजन था, जिसमें असंख्य प्रचलित पाठशाला में देश भर में फैली हुई थी प्रायः प्रत्येक ग्राम में अपना स्कूल या पाठशाला थी कहा जाता है कि १८३५ के आस–पास, केवल बंगाल में इस प्रकार की एक लाख पाठशालायें थी।"

एडम की रिपोर्ट में दिये हुए आकड़ों के सम्बन्ध में बहुत मतभेद है। सर फ्रिलिप हरटाँग ने इसकों कल्पना मात्र माना है। इसके विपरीत वार्ड प्रांजपे और पारूलेकर के मतानुसार ये आकड़े पूर्ण रूप से सत्य है।

एडम की दूसरी रिपोर्ट :–

इस रिपार्ट में एडम ने राजशाही जिले मे थाना नटौर की शिक्षा के विषय में वर्णन देते हुए इनका कहना है कि इस थाने की जनसंख्या १,६५,२६६ और गाँवों की संख्या ४५८ थी। इतनी विशाल जनसंख्या के लिए २७ प्राइमरी स्कूल थे जिसमें से ११ हिन्दुओं के और १६ मुसलमानों के थे इनमें २६२ विद्यार्थी पढ़ते थे। इन स्कूलों में बंगाल के १० फारसी के ४ अरबी ११ और बंगला और फारसी के दो स्कूल थे इसके अलावा उन्होंने व्यक्तिगत रूप से दी जाने वाली पारिवारिक शिक्षा का भी वर्णन किया है।

उनका कहना है कि २३८ गाँवों में १,५८८ परिवार ऐसे थे जो बच्चों का घर पर ही शिक्षा देते थे। इस प्रकार से पारिवारिक शिक्षा का प्रसार एवं प्रचार

पाठशालाओं की अपेक्षा अधिक था। बालक साधारणतः ८ वर्ष की आयु से १४ वर्ष की आयु तक पाठशालाओं में पढ़ते थे। अध्यापकों का मासिक वेतन ५ रूपया आठ आना था। स्त्री शिक्षा का पूर्ण अभाव था। प्रौढ़ व्यक्तियों की साक्षरता का प्रतिशत ६.७२ था।

शिक्षा पद्धति :–

शिक्षा पद्धति का वर्णन करते हुए एडम का कहना है कि कभी–कभी बहुत से चौधरी मिलकर अपने बच्चों के लिए एक शिक्षक की व्यवस्था करते थे। ये विद्यालय अमीर व्यक्तियों के घरों में लगा करते थे, फारसी उस्तादों का मासिक वेतन ४ रू० से १० रू० तक होता था। मुद्रित पुस्तक उपलब्ध नहीं थी, हिन्दु बालकों की तरह मुस्लिम बालकों की शिक्षा एक संस्कार द्वारा प्रारम्भ होती थी। जिसमें कुरान की पवित्र पंक्तियों को दोहराया जाता था। जनसाधारण की निर्धनता के कारण कई स्थानों पर पाठशालाओं को बन्द करना पड़ा। क्योंकि वहां कि जनता शिक्षा के व्यय को वहन नहीं कर सकती थी। इसके अलावा स्त्री शिक्षा का सर्वथा अभाव था। केवल कुछ जमीदार घरानों में बालिकाओं को लिखने–पढ़ने, हिसाब–किताब का सामान्य ज्ञान प्रदान कर दिया जाता था। वैसे स्त्री शिक्षा का प्रचलन नहीं था।

एडम की तीसरी रिपार्ट :–

एडम की तृतीय रिपोर्ट प्रथम रिपोर्टों से अधिक महत्वपूर्ण है। एडम को मुर्शिदाबाद, वीरभूमि, दक्षिण बिहार, वर्दमान, दक्षिणी बिहार और तिरहुत आदि सभी

जिलों में आकड़े प्राप्त हो गये थे। मुर्शिदाबाद थाने में १,८६,८४१ जनसंख्या में केवल ११३ स्कूल थे।

इन विद्यालयों में विद्यार्थियों की स्कूल संख्या १,३६६ थी जिनमें २८ लड़कियाँ थी। वीरभूमि की जनसंख्या १२,६७,०६७ थी जिसमें ५४४ स्कूल थे इन विद्यालयों में विद्यार्थियों की स्कूल संख्या ७,३५० थी जिसमें ११ लड़कियाँ थी। इस प्रकार वर्दमान की कुल आबादी ११,८७,५८० थी जिसमें ६३१ स्कूल थे इनमें विद्यार्थियों की संख्या लगभग १५,८१४ की थी जिसमें ६०५ स्कूल थे इनमें विद्यार्थियों की संख्या ५,०३६ थी तिरहुत की स्कूल आबादी १६,६७,७०० की थी जिसमें ३७४ स्कूल थे इनमें विद्यार्थियों की संख्या १,३१६ थी। इन जिलों में स्कूल विद्यालयों की संख्या २,५६७ विद्यालय थे जिनमें बंगला, हिन्दी, संस्कृत, फारसी और अरबी की शिक्षा दी जाती थी। इनमें से ८ विद्यालय अंग्रेजी की और ६ बालिकाओं की शिक्षा के लिए थे, जिनमें क्रमशः २४२ लड़के और २१४ लड़कियाँ पढ़ रही थी।

शैक्षिक स्थिति :-

एडम के अनुसार शिक्षकों की आर्थिक स्थिति सन्तोष जनक नहीं थी। शिक्षकों की औसत आमदनी ५.२ रू० प्रति माह थी, ज्यादातर इनका खर्च धनी जमीदारो, ताल्लुकदारों आदि के द्वारा वहन कर लिया जाता था। विद्यालयों के पास आय के निश्चित साधन नहीं थे जो कुछ धन जमीदारों, ताल्लुकदारों से मिल जाता था उसी चलते थे धनी व्यक्ति अपने घरों पर ही पाठशालाये खुलवा

देते थे। मुसलमानों में अरबी तथा फारसी का प्रचलन था और हिन्दुओं में बंगला, संस्कृत, तथा हिन्दुस्तानी लड़कियों की शिक्षा के प्रति अनेक प्रकार की भ्रांत धारणायें व्याप्त थी। एक तो यह भ्रान्ति लोगों में छाई हुई थी कि शिक्षित लड़कियां विवाहोपरान्त विधवा हो जाती है उसका दुष्परिणाम यह हुआ कि लोग स्त्री शिक्षा से डरने लगे। स्त्री शिक्षा का प्रचार केवल कुछ उदार विचार वाले और धनी हिन्दु परिवारों में था। मुसलमानों में स्त्री शिक्षा अशुभ समझा जाता था।

पंजाब में शिक्षा की दशा :–

लिटनर महोदय ने पंजाब प्रान्त की शैक्षिक परिस्थियों का सर्वेक्षण किया इसके अनुसार पंजाब प्रान्त में ३ प्रकार के स्कूल थे–

(१) हिन्दु स्कूल (२) सिक्ख स्कूल (३) मुस्लिम स्कूल

अधिकांश विद्यालय ऐसे पवित्र ग्रन्थों को पढ़ाते थे, जो कि शास्त्रीय शब्दावली में अधिकांश विद्यालय लिखी गई थीं जिनको न तो पढ़ाने वाला ही समझ सकता था, न पढ़ने वाला ही। इस प्रदेश की विशेषता स्त्री शिक्षा थी। पंजाब के प्रत्येक भाग में स्त्री शिक्षा पाई जाती थी और लड़कियाँ और अध्यापिकाएं अधिकतर हिन्दु, मुसलमान तथा सिक्ख जाति की हुआ करती थी। इन शिक्षकों का वेतन परिवर्तनशील हुआ करता था। कभी–कभी अनाज तथा मिष्ठान उपहार स्वरूप दिये जाते थे। इसके अतिरिक्त भारत के अन्य भागों में शिक्षा केवल ब्राह्मणों, क्षत्रियों तथा कायस्थों तक ही सीमित थी, किन्तु पंजाब में

शिक्षा कृषि, व्यवसाय अपनाने वाले को ही मुख्यतः दी जाती थी। बालकों तथा अभिभावकों पर देशी स्कूलों को छोड़ने तथा सरकारी स्कूलों में प्रवेश लेने के लिए दबाव डाला जाता था। देशी स्कूल इसी प्रकार विलुप्त होते गये और सरकारी स्कूलों की संख्या बढ़ती गई।

संस्थाओं के प्रकार :–

भारत में अंग्रेजों के आने से पहले देशी शिक्षण संस्थाओं का एक जाल सा बिछा हुआ था। देशी पाठशालायें अति प्राचीन काल से चली आ रही थी। इन पाठशालाओं में देश की सामाजिक, सांस्कृतिक तथा स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार शिक्षा दी जाती थी। अंग्रेजों का प्रशासन शुरू होने से पहले अधिकांश गाँवों में से प्रत्येक में एक पाठशाला होती थी। इस प्रकार उस समय शिक्षा का व्यापक प्रसार था। भारत में कई प्रकार की शिक्षण संस्थाएं विद्यमान थी। ज्ञान पीठ व प्रारम्भिक विद्यालय।

ज्ञानपीठ :–

यद्यपि हिन्दू तथा मुसलमानों की शिक्षण संस्थाएं अलग–अलग थी, किन्तु दोनों में कई बातों में एक रूपता पाई जाती थी। उदाहरणार्थ दोनों की संस्थाओं को राजाओं, जागीरदारों तथा धार्मिक पुरूषों के द्वारा आर्थिक सहायता प्राप्त होती थी। दोनों में लब्ध–प्रतिष्ठ विद्वान, शिक्षक रखे जाते थे। जिनको अत्यधिक अल्प वेतन दिया जाता था। दोनों में निःशुल्क शिक्षा प्रदान की जाती थी। दोनों में शास्त्रीय भाषाओं का प्रयोग माध्यम के रूप में किया जाता था। हिन्दू के

विद्यालयों में संस्कृत तथा मुसलमानों के मदरसों में फारसी का प्रयोग होता था। दोनों में परम्परागत पद्धतियों के द्वारा शिक्षा दी जाती थी दोनों में शिक्षकों के अनेक विधियों के द्वारा आर्थिक लाभ प्रदान किया जाता था। जैसे– राजाओं के द्वारा भूमि दान शिष्यों तथा नागरिकों द्वारा उपहार या भेंट तथा भोजन, वस्त्र तथा अन्य रूपों में भुगतान। अन्तिम विशेषता यह थी कि दोनों में शिक्षकों की संख्या कम थी जो कि विद्यार्थियों को न केवल निःशुल्क शिक्षा प्रदान करते थे, बल्कि उनमें भोजन तथा आवास का भी प्रबन्ध करते थे। सामान्य रूप से विद्यालयों के पास कोई भवन न था। जहाँ कही शिक्षा भवन होते भी थे वे या तो शिक्षकों के द्वारा अथवा धनिकों या जनता की सहायता से निर्मित होते थे। ये विद्यालय किसी स्थानीय मन्दिर अथवा मस्जिद में लगते थे। इन विद्यालयों में विद्यार्थी कोमल अवस्था में ही प्रवेश करते थे और लगभग ७२ वर्ष या उससे अधिक काल तक शिक्षा प्राप्त करते थे। राज्य विद्यालयों के दिन प्रतिदिन के क्रिया–कलाप में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करता था। ये विद्यालय विद्वानों के द्वारा व्यक्तिगत रूप से धार्मिक अथवा आर्थिक कारणों से संचालित किये जाते थे। हिन्दुओं की पाठशालाएं ब्राह्मणों के द्वारा संचालित किये जाते थे और अधिकांश शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थी भी ब्राह्मण हुआ करते थे। इन विद्यालयों में बालिकाएं शिक्षा प्राप्त नहीं करती थी। फारसी तथा अरबी मदरसों में यद्यपि शिक्षक सामान्यतः मुसलमान ही हुआ करते थे किन्तु फारसी में हिन्दू अध्यापकों का होना आश्चर्य की बात नहीं समझी जाती थी। उसके अतिरिक्त

अनेक हिन्दू भी फारसी के स्कूलों में शिक्षा प्राप्त करते थे, क्योंकि फारसी उस समय राज्य कार्य की भाषा थी।

डा० एम० वी० बुच के अनुसार –

"एक शैक्षिक संस्था द्वारा अपनी अनुभव में आई आवश्यकताओं प्राप्त अथवा प्राप्त हो सकने वाले साधनों के आधार पर निर्मित अपने विकास के लिए बनाया गया कार्यक्रम उस संस्था की संस्थागत योजना कहलाती है। यह दीर्घ कालीन तथा अल्पकालीन हो सकती है। यह विद्यालय एवं समाज के सभी साधनों के चरम उपयोग पर आधारित होती है।"

बुच का विचार है कि यह अत्यन्त लाभप्रद योजना है और इसके द्वारा देश के लाखों शिक्षकों को शिक्षा की सामान्य योजना तथा विशेषतः सुधारात्मक योजना की ओर तत्पर किया जा सकता है।

देशी प्रारम्भिक विद्यालय –

इस काल के ज्ञानपीठ आधुनिक विद्यालयों के समकक्ष रखे जा सकते है। वे उस समय की ज्ञात उच्चतम शिक्षा प्रदान करते थे, जिसका स्वरूप अधिकाशतः धार्मिक होता था। इन विद्यालयों का मुख्य उद्देश्य पंडित तथा मौलवी को उत्पन्न करना था यद्यपि देशी प्रारम्भिक विद्यालय निर्बल तथा साधनहीन थे फिर भी वे जन शिक्षा प्रसार के मुख्य साधन माने जाते थे। इन विद्यालयों की शिक्षा व्यावहारिक थी और मुख्यतः विषय तक सीमित थी ये विद्यालय न केवल ऊँचे राजाओं की आवश्यकताओं की ही पूर्ति करते थे। वरन्

छोटे जमीदारों व्यापारियों तथा कृषकों की भी आवश्यकताओं को पूरा करते थे। इनके अध्यापक भी साधारण उपलब्धि के व्यक्ति हुआ करते थे और प्रायः इनका ज्ञान विद्यालय की शैक्षिक आवश्यकताओं तक ही सीमित था। इनका वेतन भी ज्ञान पीठों में कार्य करने वाले शिक्षकों की अपेक्षा कम था। प्रायः इन स्कूलों के शिक्षक, शिक्षण के अलावा अन्य व्यवसायों में भी अपने को रत रखते थे। इसके अतिरिक्त इन स्कूलों में अल्प प्रतिशत में लड़कियाँ तथा अन्य जाति में लड़के भी शिक्षा प्राप्त करते थे।

बसु के मतानुसार–''देशी शिक्षा संस्थाएं अपने दीर्घ कालीन अस्तित्व के कारण व्यक्तियों के सामाजिक तथा सांस्कृतिक जीवन के अंग बन गयी थी।''

एडम ने भी अपनी रिपोर्ट में लिखा था कि देशी शिक्षा संस्थायें ही भारतवासियों के चारित्रिक उत्थान के लिए सबसे उपयुक्त साधन है।

देशी पाठशालाएं :–

अंग्रेजों के सत्ता सम्भालने से पूर्व समस्त भारत वर्ष में देशी पाठशालाओं का जाल सा बिछा हुआ था। यह इस बात का प्रमाण था कि भारत वर्ष में उच्च तथा प्राथमिक शिक्षा पूर्ण रूप से विकसित थी शिक्षण सस्थाएं राष्ट्र के सामाजिक तथा सांस्कृतिक जीवन का विभिन्न अंग थी उस समय प्रायः प्रत्येक ग्राम आत्म निर्भर था। इसलिए अधिकांश ग्रामों में उनकी अपनी शिक्षण संस्थाएं थी। श्री एडम का कथन है कि १८३५ ई० में बंगाल तथा बिहार में एक लाख देशी विद्यालय अर्थात ३ ग्रामों के लिए दो विद्यालय, व्यक्तियों की दृष्टि से देखा

जाय तो ४०० व्यक्तियों के पीछे एक विद्यालय था। मद्रास प्रान्त में १८ वीं शताब्दी के मध्य में ३,४८४ एक व्यक्तियों के पीछे १ बालक विद्यालय में जाता था। बंगाल का यह अनुपात ३८ और १ का था और बम्बई प्रान्त में ६२ और १ का पाठ्यक्रम में लिखना पढ़ना तथा गणित ये विषय पढ़ाए जाते थे। पाठशालाओं में शिक्षण सामग्री का अभाव था। प्राथमिक पाठशालाओं में एक ही अध्यापक हुआ करता था। अनुशासन भंग करने पर कड़ा दण्ड दिया जाता था। पाठशालाओं का कोई निश्चित समय नहीं था। कक्षाएं अध्यापकों के घरों में या मन्दिरों में लगा करती थी, अध्यापकों को वेतन बहुत कम दिया जाता था। परन्तु फिर भी श्री मुखर्जी के अनुसार उनकी दशा उतनी खराब नहीं थी जितनी कि आज कल है।

देशी शिक्षा :–

ब्रिटिश काल से पूर्व भारत वर्ष में शिक्षा अनिश्चित एवं अब्यवस्थित थी इस समय सम्पूर्ण भारत में देशी पाठशालाएं पर्याप्त संख्या में विद्यमान थी। इन पाठशालाओं में एकांकी शिक्षा पद्धति का प्रचलन था। इसके अतिरिक्त मानीटर प्रणाली भी प्रचलित थी। पाठशालाओं में संस्कृत, हिन्दी, बंगला, फारसी, अरबी, उर्दू भाषाओं के माध्यम से शिक्षा दी जाती थी। अतः देशी पाठशालाएं शिक्षा के प्रसार में अवश्य लगी हुई थी, परन्तु आर्थिक दशा शोचनीय थी। पाठशालाओं के संचालन करने के लिए धन का अभाव था। शिक्षकों को प्रशिक्षित करने की कोई व्यवस्था नहीं थी। पाठशालाओं के लिए सुन्दर भवन निर्माण का कोई

प्रबन्ध नहीं था और सबसे बड़ी बात यह है कि तत्कालीन सरकार की शिक्षा के प्रति अत्यन्त उपेक्षा पूर्ण नीति थी इस सम्बन्ध में श्री ए० एन० बसु ने ठीक ही लिखा है– ''पाश्चात्य शिक्षा व्यवस्था का कोई महत्व नहीं था तथा ब्रिटिश अधिकारी उसे समाप्त करने में उचित ही थे।''

देशी पाठशालाओं की विशेषताएं :–

देशी पाठशालाओं की साज सज्जा बहुत ही साधारण होती थी। उनके पास कोई भवन नहीं था। वे कभी–कभी वृक्षों के नीचे भी लगा करती थी। उनमें मुद्रित पुस्तकें न थी और जिन स्लेट तथा पेन्सिलों का प्रयोग होता था। वे बस्तियों में ही बनायी जाती थी। अनुदेश की अवधि तथा कार्य दिवस की संख्या स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार निर्धारित की जाती थी। विद्यालयों का आकार छोटा होता था विद्यार्थियों की संख्या १ से १५ तक हुआ करती थीं। शिक्षार्थी किसी अवस्था में प्रवेश कर सकता था। वह अपनी योग्यतानुसार शिक्षा प्राप्त करता था और जब वह सभी इच्छित ज्ञान प्राप्त कर लेता था, तब विद्यालय छोड़ देता था। पाठ्यक्रम बड़ा ही संकीर्ण हुआ करता था। जिसमें केवल पढ़ना लिखना तथा हिसाब–किताब ही शामिल था। उस समय शिक्षा निःशुल्क हुआ करती थी, परन्तु अभिभावक अपनी सामर्थ्यानुसार रूपये अथवा वस्तु के रूप में शिक्षकों को शुल्क प्रदान करते थे, परन्तु देशी प्रारम्भिक पाठशालाओं की सर्व प्रमुख विशेषता स्थानीय वातावरण के साथ अनुमूलनशीलता थीं।

हिन्दुओं की उच्च शिक्षा संस्थाएं पश्चिमी भारत में पाठशाला के नाम से, बंगाल में टोल के नाम से, और दक्षिण भारत में "अग्रहार" के नाम से विख्यात थी। १८०१ के लगभग हेमिल्टन के अनुसार चौबीस परगना में १६०, हुगली जिले में १५० और पूर्निया में ११६ उच्च शिक्षा के लिए पाठशालएं थी। वार्ड के अनुसार कलकत्ता में १८१८ ई० में २८ और नदियां ३१ टोल वर्तमान थे। जिस प्रकार हिन्दुओं की उच्च शिक्षा की संस्थाएं थी, उसी प्रकार मुसलमानों के लिए भी उच्च शिक्षा की संस्थाएं थी। इन उच्च शिक्षण संस्थाओं में उनको अरबी तथा फारसी, साहित्य, तर्क शास्त्र तथा अध्यात्म शास्त्र का ज्ञान कराया जाता था।

देशी शिक्षा की अवनति :–

१६ वीं शताब्दी तक भारत में अंग्रेजी शासन की जड़े भलीभाँति जम गयी थी। देशी शिक्षा का पतन ब्रिटिश शिक्षा नीति के परिणामस्वरूप हुआ। अंग्रेजों की स्वार्थ परायणता, धन लोलुपता एवं व्यापारिक एकाधिकार और राजनीतिक स्वामित्व को चिरस्थायी बनाये रखने की अभिलाषा ने आर्थिक संकटों से आवृत देशी शिक्षा का गला घोट दिया। यदि तत्कालीन देशी शिक्षा को राज्य का संरक्षण मिल जाता तो निःसंदेह उसमें नव जीवन का संचार हो गया होता, सुलभ और सस्ती होने के कारण वह पहले की ही तरह जनसाधारण की आवश्यकताओं की पूर्ति करती रही इतना ही नहीं अपितु उसके अवशेषों पर राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली के भवन का निर्माण करना भी सम्भव हो जाता।

एडम ने अपनी रिपोर्ट में लिखा था कि देशी शिक्षा संस्थायें ही भारत वासियों के चारित्रिक उत्थान के लिए सबसे अधिक उपयुक्त साधन है। उसने इस बात की सिफारिश की थी कि भारत में शिक्षा उन्नति पर आधारित होने चाहिए। मुनरों, एल्फिस्टन, टॉमसन और लेटनर ने देशी शिक्षा संस्थाओं के पुररूत्थान के लिए अनेक योजनाएं तैयार की पर ईस्ट इण्डिया कम्पनी के डाइरेक्टरों और ब्रिटिश पार्लियामेण्ट ने उसकी ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया भारत की देशी शिक्षा और इसके फलस्वरूप उसके साहित्य और संस्कृति का विनाश करके ही अंग्रेज इस देश पर अपनी राजनीतिक सत्ता का चिरस्थायी रख सकते थे। इसके फलस्वरूप देशी शिक्षा का पतन होने लगा और अंग्रेजी शिक्षा का उत्थान होने लगा था। देशी शिक्षा के पतन के निम्नलिखित कारण थे जो इस प्रकार से है–

देश की बढ़ती हुई निर्धनता :–

देशी शिक्षा की अवनति का सबसे बड़ा कारण देश की बढ़ती हुई गरीबी थी। देश की जनता इतनी निर्धन हो चुकी थी, कि अभिभावक अध्यापक को वेतन के लिए अपने बालकों को नाम मात्र फीस तक नहीं दे पाते थे, इस सम्बन्ध में कैम्पबेल का कथन है–भारतीय जनता में सस्ती शिक्षा दिलाने के लिए सामर्थ्य नहीं है जिसका प्रमुख कारण उसकी निर्धनता है। अतः उन अधिकांश गाँवों में जहाँ पहले स्कूल थे, अब नहीं है और जहाँ बड़े स्कूल थे, वहाँ धनिकों के बच्चे शिक्षा पाते थे। अन्य बालक गरीबी के कारण वहाँ नहीं जा सकते थे।

हमारे देश में गरीबी इतनी है कि बच्चों के अभिभावक उनके लिए पुस्तक, कापी, कलम आदि नहीं खरीद सकते। गाँव के स्कूल में तो प्रायः छात्र गर्मी जाड़ा बरसात में नंगे पैर आते हैं उनके कपड़े फटे व गन्दे होते है। घर की आर्थिक स्थिति अच्छी न होने के कारण माता–पिता अपने बच्चों को खेत पर या घर पर काम कराते हैं। प्रायः गाँव के बच्चे जंगल में जानवर चराते या खेत रखाते है ये कार्य प्रायः छोटे बच्चे ही करते है। माता–पिता अनपढ़ होने के कारण देर से लाभ की अपेक्षा तुरन्त लाभ पर अधिक ध्यान देते है। इस प्रकार आप व्यय में वृद्धि हुआ करती है इसमें निवारणार्थ गरीब लोगों की दशा में सुधार की आवश्यकता थी उन्हें शिक्षित किया जाये ताकि वे शिक्षा के महत्व को समझे।

<u>राज्य की उदासीनता :</u>–

देशी शिक्षा की अवनति का दूसरा कारण राज्य की उदासीनता थी। १८२३ तक भारत के अधिकांश भाग पर अंग्रेजों की सत्ता स्थापित हो चुकी थी। और उन्हें अपने राज्य का संचालन करने के लिए अंग्रेजी जानने वाले व्यक्तियों की आवश्यकता पड़नें लगी थी । अतः उन्होंने देशी शिक्षा के प्रति ध्यान न देकर अंग्रेजी शिक्षा को प्रोत्साहित करने का अथक प्रयास किया। एडम एलफिस्टन आदि ने जो विभिन्न प्रान्तों को शैक्षिक सर्वेक्षण किया और इस सम्बन्ध में जो योजनाएं बनाई उनकी ओर ब्रिटिश अधिकारियों ने किसी प्रकार का ध्यान नहीं

दिया। देशी शिक्षा के प्रति शासकों को उदासीनता का स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि देशी शिक्षा पतन की ओर अग्रसर हो गयी।

अंग्रेजी शिक्षा का प्रचलन :-

अंग्रेजों को अपने राज्य का कार्यभार सम्भालने के लिए अंग्रेजी जानने वाले व्यक्तियों की आवश्यकता थी। फलस्वरूप इन लोगों ने अंग्रेजी भाषा की उपयोगिता पर जोर दिया और देशी शिक्षा की अवहेलना करना प्रारम्भ कर दिया। कुछ लोगों ने अनुभव करना प्रारम्भ कर दिया कि राज्य में आकर्षक नौकरी पाने के लिए अंग्रेजी शिक्षा आवश्यक है।

भारत की निर्धन जनता ने अंग्रेजी के अध्ययन में अपना प्रत्यक्ष हित देखा। उनका यह अनुभव था कि अंग्रेजी का अध्ययन करके राजपद प्राप्त हो सकता था और जीविकोपार्जन की समस्या को भी हल किया जा सकता था, अतः लोगों ने अंग्रेजी पढ़ना प्रारम्भ कर दिया। अंग्रेजी शिक्षा का प्रसार करने के लिए अंग्रेजों द्वारा ऐसे अनेक विद्यालय प्रारम्भिक वर्षों में खुलवायें थे जहॉ पर निःशुल्क शिक्षा के साथ-साथ पाठ्य पुस्तकों आदि की भी सुविधा दी जातीं थी। इसका परिणाम यह हुआ कि निर्धन भारतवासी अंग्रेजी शिक्षा के प्रति आकर्षित होने लगे। उद्योग धन्धों के नष्ट हो जाने से असंख्य कारीगर बेकार हो गये थे। अपनी आर्थिक दुर्दशा में उन्होंने अंग्रेजों की निःशुल्क शिक्षा से लाभ उठाया जिससे कि उनके बच्चे धनोपार्जन करके जीवन का निर्वाह कर सके।

शिक्षकों की दयनीय आर्थिक स्थिति :-

देशी पाठशालाओं के अध्यापकों की आर्थिक स्थिति अत्यन्त दयनीय थी। इन पाठशालाओं में बहुत ही अल्प वेतन मिलता था, जिससे कि वे अपने दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर पाते थे निम्न–वेतन के कारण कोई भी योग्य व्यक्ति देशी शिक्षा संस्थाओं में शिक्षक का कार्य नहीं करते थे। जिसके परिणाम स्वरूप शिक्षा का स्तर निम्न होता चला गया और जनता को ऐसी शिक्षा के प्रति कोई रूचि नहीं रह गयी थी।

प्रशिक्षण संस्थाओं की कमी :–

अध्यापकों की अल्पयोग्यता एवं प्रशिक्षण के अभाव के कारण इन पाठशालाओं प्रभावहीन शिक्षण पद्धतियां अपनाई जाती थी। उस समय देश में प्रशिक्षण संस्थाओं का घोर अभाव था जिसके कारण अदीक्षित अध्यापक ही इन देशी पाठशालाओं के लिए प्राप्त होने थे। जो कि शिक्षण विधि से पूर्णतया अपरिचित थे। इसके विपरीत अंग्रेजों ने प्रशिक्षण विद्यालयों की स्थापना की जिसमें प्रशिक्षण प्राप्त करके अध्यापकों को अंग्रेजी स्कूलों में अच्छा वेतन मिलता था, इस प्रकार देशी स्कूलों की अपेक्षा इंग्लिश स्कूलों में प्रशिक्षित अध्यापकों द्वारा अच्छी शिक्षा प्राप्त होती थी। इसलिए देशी पाठशालाओं की ओर लोगों की रूचि खत्म हो गई और इंग्लिश स्कूलों की ओर लोगों का आकर्षण बढ़ा।

उच्चवर्ग के व्यक्तियों ने कई कारणों से अपने बच्चों को अंग्रेजी की शिक्षा देना प्रारम्भ किया। जन–साधारण ने उनका अनुकरण किया। इसके फलस्वरूप देशी शिक्षा संख्याओं में विद्यार्थियों की संख्या कम होने लगी थी।

देशी रियासतों की समाप्ति :–

अंग्रेजों द्वारा अपनी सत्ता को दृढ़ करने के लिए देशी रियासतों का अन्त कर दिया। अनेक देशी राज्यों के समाप्त होने से देशी शिक्षा संस्थाओं को जो आर्थिक सहायता मिलती थी वह समाप्त हो गयी थी। फलस्वरूप देशी शिक्षा का पतन अवश्यम्भावी हो गया।

देशी पाठशालाओं में उपयोगी दिषयों की कमी :–

यूरोप में औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप विज्ञान की शिक्षा का प्रचार बढ़ा जिससे जनता विज्ञान के नवीन विषयों की ओर आकर्षित होने लगी थी। हमारे यहाँ देशी पाठशालाओं में समय की गति के विपरीत पिटे–पिटाये विषय पढ़ायें जाते थे। जो आगे चलकर भविष्य में उपयोगी सिद्ध नहीं होते थे। अंग्रेजी शिक्षा संस्थाओं ने अपने पाठ्यक्रमों मे इन विषयों को स्थान दिया। पर देशी शिक्षा संस्थाओं ने अपनी रूढ़िवादिता के कारण ऐसा नहीं किया। परिणामस्वरूप जनता देशी शिक्षा संस्थाओं से असन्तुष्ट हो गई। अंग्रेजी स्कूलों का पाठ्यक्रम उपयोगी विषयों से परिपूर्ण था इस कारण भी जनता का आकर्षण केन्द्र देशी पाठ्शालाएं न होकर इंग्लिश स्कूल हो गये।

उपर्युक्त कारणों के फलस्वरूप देशी शिक्षा भारत में सदैव के लिए समाप्त हो गई।

तृतीय अध्याय

पृष्ठ भूमि

मिशनरियों का आगमन व शैक्षिक प्रयास के कारण

मिशनरियों के शैक्षिक प्रयास

पुर्तगाली मिशनरी

डच मिशनरी

डेन मिशनरी

फ्रांसिसी मिशनरी

मिशनरियों का आगमन एवं उनका प्रभाव

परतन्त्रता से बढ़कर अन्य वस्तु दुःख जनक नहीं होती। आदि काल में विश्व–शिरोमणि भारतवर्ष ने अपनी शिक्षा सभ्यता एवं संस्कृति की धाक जमाई थी, परन्तु मुसलमानों के आक्रमणों में साथ ही देश ने अपने पराक्रम तथा ज्ञान वैभव को विलुप्त कर दिया। लगभग ६०० वर्षों तक कभी मुसलमानों तो कभी अंग्रेजों की पराधीनता में भारत वर्ष अज्ञान, अशिक्षा तथा अन्ध विश्वास के गर्त में पड़ा रहा। हमारे देश की राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियाँ कुछ ऐसी बिगड़ती गई कि, एक के बाद एक विदेशी शासन का भारत पर आधिपत्य जमता गया। मुसलमान शासन के अन्तिम चरण में अंग्रेज जाति का भारत में आगमन प्रारम्भ हो गया था। सुदृढ़ अतीत से ही भारत के पश्चिमी देशों से व्यापारिक सम्बन्ध थे।

सर्वप्रथम पुर्तगाल व फ्रांस में व्यापारिक भारत में व्यापार करने आये थे।

पन्द्रहवीं शवाब्दी में तुर्कों की दक्षिणी पश्चिमी और दक्षिणी पूर्वी यूरोप की विजय के कारण भारत और यूरोप के मध्य प्राचीन स्थल मार्ग अवरूद्ध हो गए तब वहाँ के नाविकों ने भारत के लिए जलमार्ग खोजने का बीड़ा उठाया। इस कार्य का क्षेत्र पुर्तगाल नाविक वास्कोडिगामा को प्राप्त हुआ था। उसने २७ मई १४६८ को भारत के पूर्वी तट पर पहुँचकर कालीकट के प्रसिद्ध बन्दरगाह में जहाज को लंगर डालकर खड़ा किया इस नवीन जल मार्ग की खोज के फलस्वरूप यूरोप के व्यापारियों का भारत में आगमन हुआ।

इसके तुरन्त बाद ब्रिटिश ईसाई मिशनरियों का आगमन हुआ। इनका मुख्य उद्देश्य अपने धर्म का प्रचार करना था। साथ–साथ इन्होंने शिक्षा का प्रसार भी किया। अतः भारत में विदेशी (अंग्रेजी) शिक्षा का सूत्रपात हुआ। यह उस समय की एक नई शिक्षा प्रणाली पुकारी गई।

सन् १५५५ ई० में पहला पादरी सेण्ट जेवियर ईसाई तथा शिक्षा का प्रचार व प्रसार करने आया। वह एक हाथ में घण्टी तथा दूसरे हाथ में पुस्तक लेकर भारत के गाँव–गाँव में अपने धर्म के प्रचार के लिए घूमता रहा और प्रत्येक गाँव में ईसाई स्कूल खोलने की माँग की ताकि, प्रत्येक छात्र प्रतिदिन विद्यालय जा सके। इसके बाद १६०५–१६५६ तथा राबर्ट नाबीली ने भारत में ईसाई धर्म का प्रचार किया। वह भगवे वस्त्र पहनकर ईसाई धर्म के प्रचार के लिए ब्राह्मण से लेकर शूद्र तक गया। उसने अपने को पश्चिमी दुनिया का ब्राह्मण घोषित किया तथा बताया कि वह भारत खोया हुआ वेद साथ लाया है। अतः धीरे–धीरे ब्रिटिश युगीन शिक्षा भारत में जड़ पकड़ने लगी। इस प्रकार से भारत को शिक्षा का पश्चिमीकरण होना आरम्भ हो गया। इसलिए सन् १६०० ई० में ईस्ट इण्डिया कम्पनी भारत में भारत करने आयी कम्पनी ने व्यापार के साथ–साथ धर्म प्रचार को भी उद्देश्य बनाया तथा बाद में अंग्रेजी शिक्षा का प्रसार करके अपने साम्राज्य की स्थापना के स्वप्न को पूरा करने के लिए तुष्टीकरण के सिद्धान्त का पालन करने लगी।

भारत वर्ष की धन समृद्धि को बटोरने के लालच में यूरोपीय ईसाई मिशनरियों का भारत में आगमन का ताताँ लग गया। इसका मुख्य उद्देश्य तो

व्यापार करना ही था, फिर इन मिशनरियों ने शिक्षा के प्रति भी रूचि दिखाई इस सम्बन्ध में जैसा कि टी०एन०सिक्वेरा ने लिखा है–

* ''व्यापार के पश्चात् ही उनकी सत्ता का झण्डा लहराया तथा व्यापार के साथ ही उनकी शिक्षा का प्रारम्भ हुआ।''

वास्कोडिगामा द्वारा भारत तक पहुँचने के नवीन जलमार्ग की खोज किए जाने का प्रयास सर्वप्रथम उसका लाभ उसके देश के पुर्तगालियों ने उठाया उन्होंने इस देश में व्यापार करना प्रारम्भ कर दिया और सौ वर्षों तक अपने एकाधिकार का निर्विघ्नता और स्वच्छन्दता से प्रयोग किया। उनके व्यापरिक लाभ से प्रभावित होकर सत्तरहवीं शताब्दी में यूरोप के अनेक देशों में भारत से व्यापार करने के उद्देश्य से व्यापारिक कम्पनियों का निर्माण हुआ। यह कम्पनिया उल्लेखनीय थी। इंग्लिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी १६००, डच ईस्ट इण्डिया कम्पनी १६०२, और फ्रेंच ईस्ट इण्डिया कम्पनी १६६४, पुर्तगाली मिशनरी के डेन लोगों ने भी भारत में व्यापार करना आरम्भ किया।

कुछ समय पश्चात समान कार्य में संलग्न होने के कारण पारम्परिक प्रतिद्वन्दिता का उदय हुआ जिसके शीघ्र युद्धों का रूप धारण किया अन्त में इंगलिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने अपनी सभी प्रतिद्वन्द्वियों को परास्त करके भारतीय साम्राज्य की स्थापना की इस दिशा में अपना अभियान आरम्भ किया

---

*सिक्वेरा, टी०एन० (१६५२), ''द एजुकेशन ऑफ इण्डिया'', लंदन आक्सफोर्ड पृ.सं. २८२

यूरोप के व्यापारियों के भारत आगमन के कुछ समय उपरान्त वहाँ के ईसाई मिशनरियों ने इस देश में प्रवेश किया उन्होंने अपने अधिकारवश या स्वार्थवश और भारत की जनता को प्रभावित करने के लिए शिक्षा के प्रति रूचि दिखाई इसके अतिरिक्त ईसाई धर्म के प्रचार हेतु भी इन्होंने शिक्षा का संचालन अपने हाथों में लिया इतना सत्य है कि मिशनरियों का मुख्य उद्देश्य भारत वासियों को अपने धर्म का अनुयायी बनाना था न कि यूरोपीय ढंग की शिक्षण संस्थाओं का शिलान्यास करना।

मिशनरियों का आगमन व शैक्षिक प्रयास के कारण :–

मिशनरियों के आगमन के पूर्व भारत में देशी शिक्षा प्रचलित थी, परन्तु इनकी आर्थिक दशा सोचनीय थी। पाठशालाओं का संचालन करने के लिए धन का अभाव था शिक्षकों को प्रशिक्षित करने की कोई व्यवस्था नहीं थीं। पाठशालाओं के लिए सुन्दर भवन निर्माण का कोई प्रबन्ध नहीं था, अतः देशी शिक्षा धनाभाव व प्रशिक्षित अध्यापक उपयोगी विषयों के अभाव में समाप्त हो गई। जिस प्रकार से वैभव से आकर्षित होकर मुस्लिम जातियाँ प्रविष्ट हुई उसी प्रकार से यूरोपीय जातियाँ यहाँ के मिशनरियों ने भारत आना प्रारम्भ किया इन मिशनरियों का उद्देश्य शिक्षा प्रदान करना न था बल्कि वे धर्म प्रचार करना चाहते थे यो वे कहा करते थे कि वे भारत में ईसाईयों तथा मसालों की खोज में आये हैं, वस्तुतः उनका उद्देश्य ईसाई धर्म का प्रचार करना था फिर भी

उन्होंने शिक्षा प्रदान करने के कार्य को प्राथमिकता प्रदान की इसका कारण बताते हुए प्रसिद्ध मिशनरी डा० डी०ओ० ऐलन ने लिखा है– प्रथम, यहाँ के निवासियों को शिक्षित करके मिशनरी उन्हें अपने धार्मिक सिद्धान्तों से पूर्ण रूप से अवगत कराने का पूर्ण अवसर प्रदान किया। परीक्षा संस्थायें उन्हें भारतवासियों से सम्पर्क स्थापित करने और धर्म का प्रचार करने का अवसर देती थी। इस अवसर से पूर्ण लाभ उठाने के लिए मिशनरियों ने भारत के विभिन्न स्थानों में शिक्षा संस्थाओं की स्थापना की ओर उनमें पाश्चात्य ढंग पर शिक्षा प्रदान करने का कार्य आरम्भ किया।

अतः मिशनरियों ने शिक्षा संस्थायें स्थापित की ओर उनमें यूरोपीय ढंग पर शिक्षा की व्यवस्था की। यही कारण है कि मिशनरियों को भारत में आधुनिक शिक्षा का प्रवर्तक माना जाता है। मिशनरियों ने शिक्षा प्रचार सम्बन्धी कार्यों को अपने सामान्य कार्यक्रम का अभिन्न अंग इसलिए बनाया कि क्योंकि मिशनरियों की शैक्षिक क्रियाओं के संचालन का सबसे प्रमुख कारण धर्म परिवर्तन था। वस्तुतः मिशनरियों के इतिहास के प्रारम्भिक दिनों में एक ऐसा समय भी था कि जबकि मिशन के अधिकारियों ने यह धारणा व्यक्त की कि पादरियों का कार्य स्कूलों की स्थापना नहीं है, किन्तु बाद में आगे चलकर व्यावहारिक कठिनाइयों को दृष्टिगत रखते हुए यह अनुभव किया कि उन्हें धर्म परिवर्तन के लिए शिक्षा को माध्यम बनाना चाहिए।

मिशनरियों की शैक्षिक क्रियाओं के पीछे एक गम्भीर रहस्य छिपा था। वह था, भारतीय जनता का विश्वास प्राप्त करना जिससे कि उनके लक्ष्य की पूर्ति हो। तीसरा कारण जनता के हृदय और मस्तिष्क को शिक्षित करना था जिससे कि वे ईसाई धर्म के ग्रन्थों में निहित तथ्यों तथा सिद्धान्तों को समझ सके और ईसाई धर्म प्रचारक जन–साधारण के सम्पर्क में आवे और उनको यह प्रदर्शित करने का अवसर मिले कि ईसाई धर्म तक विश्लेषण तथा सिद्धान्तों की बुद्धिमत्ता पूर्ण व्यवस्था पर आधारित है। मिशनरियों ने यह भी अनुभव किया कि स्कूल समाज के विभिन्न वर्गों के साथ सम्बन्ध स्थापित करने का बहुत ही महत्वपूर्ण साधन हो सकता है। शिक्षालय भवन लोगों से परिचय प्राप्त करने सामाजिक सम्बन्ध स्थापित करने तथा धार्मिक पूजा पाठ के लिए एक प्रमुख स्थान हो सकता है। शिक्षालय भवन का उपयोग शिक्षा की उपेक्षा धार्मिक क्रिया कलाप के लिए अधिक श्रेयस्कर हो सकता है। शुरू में मिशनरियों धर्म प्रचार में अनेक प्रकार की व्यावहारिक कठिनाईयों का अनुभव होने लगा। प्रारम्भिक दिनों में जिन भारतीयों ने ईसाई धर्म स्वीकार किया था, वे अधिकांशतः लोग न तो बाइबिल को पढ़ पाते थे और न इसको समझ ही सकते थे। अंग्रेज ईसाई बाइबिल को पढ़ाना मोक्ष के लिए आवश्यक समझते थे। इसलिए उन लोगों ने स्कूल खोलने की आवश्यकता का अनुभव किया, जहाँ पर ईसाई धर्म स्वीकार करने वाले अशिक्षित लोगों को पढ़ने लिखने की शिक्षा प्रदान की जा सके। इसी कारण से इन लोगों ने प्रेस भी खोले जहाँ पर बाइबिल का अनुवाद भारतीय भाषाओं में हो

सके उन लोगों को ईसाई धर्म स्वीकार करने वाले नये लोगों के लिए व्यावसायिक पाठशालाओं की स्थापना तथा समाज में सम्मान तथा प्रतिष्ठा देने के लिए सरकारी नौकरी दिलवानी पड़ी ।

ईसाई पादरियों ने इस बात का भी अनुभव किया कि उनका कार्य धर्म–परिवर्तन के साथ समाप्त हो जाता है । इसलिए उनका मुख्य कार्य धर्म परिवर्तन ही उतना नहीं है कि जितना कि ईसाई धर्म स्वीकार करने वाले व्यक्तियों में सामाजिक सांस्कृतिक सुधार लाना है, यह एक ऐसा लक्ष्य था जो स्कूलों कें संचालन के बिना पूरा नहीं हो सकता था। यह कार्य और भी आवश्यक इसलिए हो गया कि देशी तथा राजकीय पाठशालाएं सभी भारतीय ईसाई बालकों को प्रवेश देने में असमर्थ था, इसलिए यदि मिशनरियों ने स्कूल न खोला होता तो बिना शिक्षा के ही रह जाते चूंकि मिशनरियों के आने से पूर्व स्कूल खोलना तथा जनता की शिक्षा की व्यवस्था करना हिन्दू तथा मुसलमान राजाओं का कार्य समझा जाता था इस परम्परा को कायम रखने के लिए भी मिशनरियों ने शैक्षिक क्रियाओं में रूचि ली।

इसके अतिरिक्त ईस्ट इण्डिया कम्पनी भारत के उच्च वर्गीय प्रभावशाली व्यक्तियों के लड़को को शिक्षित करना चाहती थी जिससे कि उनमें उनका विश्वास प्राप्त हो सके और उन लोगों को उच्च पदों पर आसीन करके अपने शासन को दृढ़ बनाये। इन सबसे ऊपर एक अन्य कारण यह भी था कि शासन का कार्य संचालन हेतु अंग्रेजी पढ़े लिखे लोगों की आवश्यकता थी। विशेष रूप से न्यायालयों में हिन्दू तथा

मुस्लिम कानूनों की व्याख्या के लिए अंग्रेजों, जजों, सलाहकारों तथा व्याख्याकारों की आवश्यकता थी। इस प्रकार से ईसाई धर्म प्रचारकों ने शीघ्र ही अनुभव किया कि स्कूलों का संचालन धर्म परिवर्तन नीति का कारण और अभाव दोनों ही है और शैक्षिक तथा मिशनरी कार्य दोनों साथ–साथ करने पड़ेंगें। इसी अनुभूति के फलस्वरूप भारत में मिशन स्कूलों की स्थापना हुई।

मिशनरियों के शैक्षिक प्रयास –

मिशनरियों के द्वारा शिक्षा के कार्य को स्वाभाविक अभिरूचि और उत्साह से बढ़ाया गया। इन मिशनरियों में पुर्तगाली मिशनरी, डेन मिशनरी, डच मिशनरी, फ्रांसीसी मिशनरी और अंग्रेज मिशनरी शामिल है। इन्होने शिक्षा के क्षेत्र में अपूर्व योगदान देकर भारत में आधुनिक शिक्षा की नींव डाली इन मिशनरियों ने अनेक स्कूल व विद्यालय भारतीयों की शिक्षा के लिए खोले पर इन सबका मुख्य उद्देश्य धर्म परिवर्तन था, जिसके लिए उन्होनें शिक्षा को अपना माध्यम चुना कारण कुछ भी रहा हो परन्तु भारत की आधुनिक शिक्षा प्रणाली का प्रारम्भ इन मिशनरियों द्वारा ही किया गया था यही कारण है कि मिशनरियों को भारत में आधुनिक शिक्षा का प्रवर्तक माना जाता है। इस संदर्भ में नुरूल्लाह व नायक के अग्रांकित शब्द उल्लेखनीय हैः–

* "इन मिशनरियों का मुख्य उद्देश्य अंग्रेजी के माध्यम से ईसाई धर्म का प्रचार करना था।" *

---

* नुरूल्लाह एण्ड नायक (१९६२), "ए हिस्ट्री ऑफ एजुकेशन इन इण्डिया", पृ.स. १४

<u>पुर्तगाली मिशनरी</u> –

सर्वप्रथम पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी में पुर्तगाली लोग भारत में आए उनको आगमन के साथ भिन्न–भिन्न शाखाओं के रोमन कैथोलिक धर्म प्रचारक भी यहां पर आने लगें। पश्चिमी भारत में जहां–जहां पर पुर्तगाल निवासियों के व्यापार के केन्द्र थे वहां–वहां पर धर्म प्रचारक भी रहने लगे। इन स्थानों पर ईसाई धर्म प्रचारकों के प्रयास से शिक्षा की आधुनिक प्रणाली का जन्म हुआ। पुर्तगाली मिशनरियों ने सर्वप्रथम गोआ, दमन, दीव, हुगली, चटगांव तथा लंका स्थानों पर उन्होने अपनी संस्थाएं खोली। इन विद्यालयों में उन बालकों के लिए शिक्षा का प्रबन्ध था जो पुर्तगाली और यूरेशियन हों अथवा जिनके अभिभवाकों ने ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया है। यह विद्यालय प्राथमिक शिक्षा प्रदान करते थे। इनमें पुर्तगाली धर्म गणित कुछ हस्त उद्योग तथा स्थानीय भाषाएं पढ़ाई जाती थी।

ईसाई धर्म प्रचारकों ने केवल प्राथमिक शिक्षा की ओर ही नहीं गया बल्कि उन्होने स्नातक विद्यालयों की भी स्थापना की। १५७५ ई० में गोआ में प्रथम ग्रेजुएट कालेज की स्थापना पुर्तगालियों द्वारा की गई, जहां पर ३०० छात्र विद्याध्ययन करते थे अन्य स्थानों पर भी कालेजों की स्थापना का प्रयत्न किया गया इन कालेजों में ईसाई धर्म, लैटिन धर्म, तर्क शास्त्र, व्याकरण व संगीत आदि की शिखा प्रदान की जाती थी अकबर ने इनसे प्रभावित होकर आगरा में एक जैसुएट कालेज की स्थापना की थी परन्तु उससे कोई विशेष लाभ न हो सका क्योंकि उनकी शिक्षा केवल धर्म प्रचार ही थी

कुछ ऐसी भी प्रशिक्षण संस्थाएं भी खोली गयीं जहां पर ईसाई धर्म प्रचार के लिए प्रचारक तैयार किये जाते थे।

ईसाई धर्म प्रचारकों सेंट फ्रांसिस जावियर तथा राबर्ट डी नोबिली का नाम सर्वप्रथम लिया जाता है। सेंट फ्रांसिस जावियर १५४२ में भारत आया था। उसने ईसाई धर्म का प्रचार बड़ी लगन से किया ओर स्थान–स्थान पर धर्म से सम्बन्धित पुस्तकें वितरित की वह ग्राम–ग्राम और गलियों में घण्टी बजाता हुआ घूम–घूम कर ईसाई धर्म का प्रचार करता था। सन १५७५ में बम्बई के पास बांदरा से सेन्ट ऐनी विश्वविद्यालय तथा सन् १५७७ ई० में कोचीन में एक प्रेस स्थापित किया।

दूसरा धर्म प्रचारक राबर्ट डी नोबिली था। जो अपने को पाश्चात्य ब्राहमण कहता था तथा ब्राहमणों का वेश धारण करता था और भोजन पकाने के लिए ब्राहमण रसोइयां रखता था। वह कहता था कि वेदों को भारत वापिस लाया है। उसकी वेशभूषा हिन्दू सन्यासियों सी होती थी। वह अपने मस्तक पर तिलक लगाता था, केवल ब्राहमणों की अपना सेवक रखता था और शुद्ध और सात्विक भोजन उसका आधार था। वर्नियर द्वारा जेसुइट कालेज का उल्लेख किया था।

यह ईसाई धर्म प्रचारक हिन्दू धर्म और भारतीय संस्कृति पर आक्षेप करते थे। इसलिए भारतीयों ने इसका तीव्र विरोध किया फलस्वरूप इनका राज्य विकसित न हो सका।

पुर्तगाली मिशनरियों ने अपने शिक्षा कार्य पुर्तगाली बस्तियों तक ही सीमित रहे और उनका व्यापक प्रभाव नहीं पडा। परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि भारत में आधुनिक

शिक्षा व्यवस्था के बीजारोपण का श्रेय इन्हीं को प्राप्त है। १५६६ में पुर्तगाली शक्ति के समाप्ति के साथ–साथ इनकी शिक्षा संस्थाओं का भी ह्रास प्रारम्भ हो गया और वे कालान्तर में पुर्तगाली मिशनरी का आधिपत्य केवल गोआ, दमन, और ड्यू तक सीमित रह गई।

डच मिशनरी :–

पुर्तगाल वासियों की भांति हालैण्ड के निवासी डच भी भारत वर्ष में १७वीं शताब्दी में आये। वे बड़े परिश्रमी और कुशल नाविक थे। इन्होने भी पूर्वी देशों के साथ व्यापार करने के लिए एक कम्पनी खोली। इनका मुख्य उद्देश्य व्यापार था। वे कलकत्ता के आस–पास बस गये और अनेक कारखानों की स्थापना की। पुर्तगालियों के पतन के कारण को वे अच्छी तरह समझते थे, जिसमें वे संघर्ष प्रारम्भ का कारण धर्म प्रचार भी मानते थे। अतः डच कुशल नीतिज्ञ होने के कारण धर्म प्रचार सम्बन्धी बातों से दूर रहे।

डच ईस्ट इण्डिया कम्पनी का आधिपत्य लंका मद्रास तट पर नागापट्टम और बंगाल में चिनसुरा प्रदेश था। अंग्रेजों के प्रबल विरोध के कारण डचों की स्थिति कभी महत्वपूर्ण नहीं रही। १७५६ में वेदरा नामक स्थान पर अंग्रेजों से परास्त होकर उनका सौभाग्य सूर्य सदैव के लिए निस्तेज हो गया। इनमें कारखनों के कर्मचारी प्रधान रूप से हालैण्ड निवासी नहीं थे किन्तु भारतीयों को भी इन कारखानों में प्रवेश मिला था। डचों ने व्यापार करने के साथ ही साथ अपने यहां कार्य करने वाले अभिभावकों के बच्चों को शिक्षित करने के उद्देश्य से उनकी शिक्षा की सुविधा के लिए अनेक

विद्यालयों की स्थापना की। डचों का उद्देश्य धार्मिक प्रचार न होकर अपने यहाँ कार्य करने वाले व्यक्तियों के बच्चों को शिक्षा प्रदान करना था, किन्तु इस प्रकार की कोई रोक इन विद्यालयों में न थी कि बाहरी लोग शिक्षा ग्रहण ही नहीं कर सकते हैं। अनेक भारतीय लोगों के बच्चे इन विद्यालयों में शिक्षा ग्रहण करते थे। ये लोग अपनी मातृभाषा के साथ भारतीय भूगोल, कला–कौशल तथा भारतीय स्थानीय भाषा की शिक्षा प्रदान करते थे।

इन मिशनरियों ने चिनसुरा (बंगाल), नागापट्टम (मद्रास) तथा विमलीपट्टम में स्कूलों की स्थापना की। डां० प्रिडें के अनुसार डचों ने उच्च शिक्षा के लिए लंका में एक कालेज खोला था। यह मिशनरी अन्त में अंग्रेजों द्वारा भारत में ही पराजित कर दी गई थी। इसलिए इनका कार्य क्षेत्र आगे बढ़ सका।

डेन मिशनरियों के शैक्षिक प्रयास :–

डेनमार्क के निवासी भी १७वीं शताब्दी में भारत वर्ष में पर्दापण कर चुके थे। उन्होने आते ही ट्रानक्यूबर और सीतापुर में अपना अड्डा स्थापित कर लिया था, यहां पर अनेक कारखाने स्थापित किये। डेनों ने वास्तव में अपने आपको दक्षिणी भारत में अंग्रेजी उपनिवेशों में, जहां ठहरे, वहीं ठहरकर तथा जहां वे आगे बढे वहाँ आगे बढ़कर उनमें मिला दिया। डेनों का उद्देश्य राज्य स्थापना न था, बल्कि व्यापार को बढ़ाना तथा शिक्षा के माध्यम से धर्म प्रचार करना था। धर्म प्रचार के लिए उन्हें शिक्षा का सहारा लेना पड़ा। धर्म प्रचारकों में जीगेज बल्ग, प्लूशो नामक पादरी प्रमुख थे। इन पादरियों ने तमिल भाषा का पर्याप्त अध्ययन किया और बड़ी सफलता के साथ धर्म

प्रचार करते थे। ये अंग्रेजों और फ्रांसीसियों के समान राजनैतिक रूप में कभी भी प्रबल शक्ति नहीं बन पाए। इनका महत्व केवल शिक्षा तथा ईसाई मत के प्रचार की दृष्टि से ही है।

सर्वप्रथम १७०६ में डेनमार्क से प्रोटेस्टेन्ट धर्म प्रचारक यहां पर आए वे बड़े धूर्त और चतुर थे। उन्होने ईसाई मत का प्रचार करने के लिए स्थानीय भारतीय भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाया। इन्होनें बाइबिल का अनुवाद तमिल भाषा में किया और तमिल भाषा का एक व्याकरण भी तैयार करवाया। इसके अतिरिक्त तमिल भाषा का एक शब्दकोष भी तैयार करवाया। जीगेन बाल्ग व उनके साथियों ने शिक्षा के लिए महत्वपूर्ण कार्य किया। ईसाई मत के प्रचार के लिए अधिक से अधिक संख्या में तमिल भाषा की पुस्तकें, जनता में वितरित करने के लिए उन्होने तमिल लिपि का एक मुद्राणालय भी खोला गया। जो लोग ईसाई हो जाते थे, उनके बालकों के लिए पाठशालाएं स्थापित की गयी। पाठशालाओं मे छात्रों की संख्या अधिक नहीं थी। परन्तु उनका महत्व केवल इसलिए है कि वहां पर तमिल तथा तेलगू इन भारतीय भाषाओं के माध्यम द्वारा शिक्षा प्रदान की जाती थी। पाठशालाओं में सभी विद्यार्थियों के लिए बाइबिल पढ़ना अनिवार्य था। डेन धर्म प्रचारकों ने जन सहयोग के लिए हिन्दुओं के स्थान पर मुसलमानों को प्राथमिकता दी। इनको सभी दृष्टियों से प्रोत्साहित किया गया और उनके लिए पृथक विद्यालय का निर्माण किया गया। इन धर्म प्रचारकों ने अंग्रेजों के साथ मिलकर कार्य किया। डेनमार्क से समय पर धन न प्राप्त होने के कारण उनका कार्य प्रायः सुचारू रूप से नहीं चल पाता था। उस समय उन्हें इंग्लैण्ड की धर्म प्रचारक समिति से आर्थिक

सहायता मिल जाया करती थी। अन्त में इन्हें अपनी बस्तियां अंग्रेजों को बेचकर अपना कार्य समाप्त करना पड़ा था। ईसाई पादरी जीगेन बल्ग और उनके साथियों ने १७१६ ई० में ट्रानक्यूबर में एक प्रशिक्षण विद्यालय की स्थापना की जिसमें प्राथमिक विद्यालय के अध्यापकों को शिक्षा दी जाती थी। इसी वर्ष दो चैरिटी स्कूल एक पुर्तगालियों के लिए और दूसरा तमिल बच्चों के लिए खोला। १७१६ ई० में जीगेन बल्ग के असामयिक निधन के कारण डेन मिशनरियों के कार्य को भारी धक्का लगा। लेकिन उनके कार्य को उनको सहयोगियों ने आगे बढ़ाया जिनमें ग्रन्डलर, किरनंदर और स्क्वार्टज प्रमुख थे। मद्रास में ग्रन्डलर १७१७ में एक पुर्तगाली स्कूल व्हाइट टाउन और मैलाबार स्कूल ब्लैक में खोला। १७४२ में किरनैनदार ने एक चेरिटी स्कूल यूरेशियों के लिए सेंट डेविड के फोर्ट के समीप खोला। इनमे सबसे महत्वपूर्ण कार्य स्क्वार्टज का था, जो कि मद्रास में शिक्षा का प्रर्वतक माना जाता था। उसने त्रिचनापल्ली में एक स्कूल यूरोपीय व यूरेशियन बच्चों के लिए तंजौर में एक अंग्रेजी चैरिटी स्कूल की स्थापना हैदर अली की सहायता से की। उसने जान सलीवन के साथ तंजौर में तीन स्कूल तंजौर, रामनद और शिवांगना में १७५ भारतीय बच्चों को अंग्रेजी शिक्षा देने के लिए खोले। डेन मिशनरियों कें शैक्षिक प्रयास अन्य यूरोपीय जातियों की अपेक्षा अधिक सफल रहे। इन लोगो नें अपनी कार्य पटुता तथा प्रभावशाली शिक्षा के द्वारा थोड़े ही समय में पचास हजार भारतीयों को ईसाई बना लिया। अन्त में इन्हें अपनी बस्तियों को अंग्रेजों को बेचकर अपना कार्य समाप्त करना पड़ा।

<u>फ्रांसीसी मिशनरी</u> –

जिस प्रकार से अन्य यूरोपीय जातियों ने भारत आकर अपनी व्यापारिक सत्ता स्थापित की, उसी प्रकार से फ्रांसीसियों ने भी १६६४ में भारत आकर कुछ समय में ही अनेक स्थानों पर कारखानों की स्थापना की। यहीं नहीं अंग्रेजों की भांति फ्रांसीसियों का उद्देश्य भी भारत वर्ष में राजनैतिक सत्ता स्थापित करना था। अतः उन्होने भी कई स्थानों पर अधिकार जमाना शुरू कर दिया। सर्वप्रथम फ्रांसीसियों ने अपने उपनिवेशों पांडिचेरी, माही, यनाम तथा चन्द्रनगर, कारीकल में प्राथमिक विद्यालयों की स्थापना की। इन विद्यालयों का मुख्य उद्देश्य ईसाई धर्म का प्रचार करना था।

फ्रांसीसी मिशनरी के विद्यालयों में भारतीय बालकों को भी शिक्षा दी जाती थी। भारतीय शिक्षक भी इन स्कूलों में शिक्षा दिया करते थे, इन स्कूलों में ईसाई धर्म की शिक्षा अनिवार्य रूप से दी जाती थी, प्रत्येक विद्यालय में एक धर्म प्रचारक भी होता था। निर्धन भारतवासियों को आर्थिक प्रलोभन देकर उन्हें ईसाई बनाने का कार्य भी इनके द्वारा किया जाता था। फ्रांसीसियों के कारखानों में भारतीय मजदूरों एवं बाबुओं को भी काम दिया गया और अनेक बच्चों की शिक्षा व्यवस्था का कार्य कारखानों के मालिकों को सौंपा गया। यह धर्म प्रचार को सरल बनाने की एक सराहनीय चाल थी। इन मालिकों द्वारा स्थापित विद्यालयों में ईसाई धर्म की शिक्षा अनिवार्य थी जो प्रत्येक पढ़ने वाले विद्यार्थी को प्रदान की जाती थी फ्रांसीसी विद्यालय के शिक्षक प्रायः भारतीय हुआ करते थे। कारखानों में काम करने वालें व्यक्तियों के बच्चों के अलावा अन्य बच्चे भी प्रवेश पा सकते थे। विद्यालयों के प्रवेश पाने के लिए धर्म जाति का कोई प्रतिबन्ध नहीं

था। बच्चों की निर्धनता के नाम भोजन, वस्त्र और पुस्तकों की व्यवस्था थी। विद्यालयों में एक धर्म प्रचारक आवश्यक रूप से नियुक्त किया जाता था।

फ्रांसीसी कम्पनी तथा अंग्रेजी कम्पनी दोनों शक्तिशाली थी। दोनों में शक्ति प्राप्त करने के लिए अनेक बार युद्ध हुए। अन्त में कर्नाटक के युद्ध कें पश्चात लगभग सन् १७६३ ई० के पश्चात फ्रांसीसी पूर्णतया परास्त कर दिये गये फलस्वरूप इनकी सत्ता तथा शिक्षाप्रणाली दोनों पर अंग्रेजों ने अधिकार कर लिया। फ्रांसीसियों के पतन के बाद उनके स्कूल अंग्रेजी स्कूलों में बदल गये।

अंग्रेज मिशनरी :–

३१ दिसम्बर १६०० ई० को ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना की गयी। सर्वप्रथम इस कम्पनी का भी मुख्य उद्देश्य व्यापार था। अंग्रेज लोग अपने आप को प्रोटेस्टेंट मत का प्रचारक समझते थे। जब उन्होने देखाकि अन्य देशों से रोमन कैथोलिक पादरी यहां पर आ रहे हैं, तो उन्होने भी भारतीय लोगों को प्राटेस्टेन्ट मत की दीक्षा देने के लिए अपने धर्म प्रचाकर भेजने आरम्भ कर दिए। कम्पनी के अधिकारी जो पादरी यहां भेजा करते थे उनके जिम्मे दो काम थे।

१. कम्पनी के कर्मचारियों में धर्म भावना बनाये रखना।

२. भारतवासियों को ईसाई बनाना।

लगभग १६१४ ई० से ही कुछ लोगों को इंगलैण्ड भेजा जाने लगा ताकि वहां पर ईसाई पादरियों से प्रशिक्षण प्राप्त कर सके। ऐसे ही एक भारतीय को जिसे ईसाई बनाया गया था जेम्स प्रथम ने पीटर का नाम दिया। उसे कम्पनी ने अपने व्यय पर धर्म

प्रचारक होने की ट्रेनिंग के लिए इंगलैण्ड भेजा। कम्पनी के अधिकारियों ने १६५६ ई० के घोषणापत्र में इस बात को स्पष्ट रूप से व्यक्त किया कि वे भारतीय लोगों को ईसाई बनाना चाहते हैं, इसलिए ईसाई मत के प्रचारक इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए कम्पनी के जलयानों पर भारत जा सकते है।

१६६८ ई० में फिर कम्पनी को यह कहा गया कि अपने कारखानों तथा जलयानों में ईसाई धर्म प्रचारक रखे तथा साथ ही साथ इस कार्य के लिए प्रत्येक कारखानें में आवश्यकतानुसार विद्यालय खोलने का आदेश भी दिया गया। जिनमें कम्पनी कर्मचारियों के बालक ईसाई मत की शिक्षा प्राप्त कर सके।

इसके अतिरिक्त ईसाई मत के प्रचारकों की और भी बहुत सी सुविधाएं कम्पनी द्वारा दी गयी। वे बिना किराया दिये कम्पनी के जलयानों पर इंगलैण्ड से भारत आ जा सकते थे। ईसाई मत से सम्बन्धित साहित्य बिना कुछ व्यय किये भारत में भेजा जा सकता था। पादरी लोग अपने मत का प्रचार जिस ढंग से करना चाहें कर सकते थे। उन पर कोई रोक–टोक नहीं थी।

कम्पनी द्वारा स्थापित विद्यालय में ईसाई मत की शिक्षा अनिवार्य थी। इसके अतिरिक्त अंग्रेजी भाषा के अध्ययन पर विशेष बल दिया जाता था। जैसे–२ अंग्रेजों का प्रभाव उत्तर पूर्व भारत में बढ़ने लगा वैसे–२ ईसाई मत के प्रचारक भी बंगाल प्रान्त में, कलकत्ता नगर के निकटवर्ती स्थानों पर आकर बसने लगे। ऐसे ही महत्वपूर्ण प्रचारकों में केरे और उसके साथी भी थे जो १८वीं शताब्दी के अन्तिम दशक में आए थे।

यहां पर हम ईस्ट इण्डिया कम्पनी के दृष्टिकोण में एक महत्वपूर्ण अन्तर पाते हैं जैसा कि उपरोक्त कथन से स्पष्ट है कि १७वीं शताब्दी में तथा १८वीं शताब्दी के मध्य तक कम्पनी द्वारा ईसाई मत के प्रचरकों को सभी प्रकार से अपना कार्य करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता था और उनके लिए सभी प्रकार की सुविधाएं जुटाई जाती थी। परन्तु अब इस दृष्टिकोण में पूर्ण परिवर्तन हो गया और ईसाई प्रचारकों के धर्म परिवर्तन सम्बन्धी कार्य को ठीक दृष्टि से न देखा जाने लगा। इसका भी एक कारण था। १७५७ ई० में प्लासी युद्ध जीतने के पश्चात अंग्रेजों का बंगाल पर पूर्ण रूप से आधिपत्य हो गया। १७६५ ई० में अंग्रेजों ने बक्सर युद्ध जीता। उन्हें स्वप्न में भी यह आशा नहीं थी कि इतनी जल्दी उनको विजय प्राप्त हो जायेगी। अब देश की आर्थिक व्यवस्था भी उनके नियन्त्रण में आ गयी। वे अब अपनी स्थिति को सुदृढ़ करना चाहते थे। जिसके द्वारा लोगों को यह भ्रम उत्पन्न हो कि उनमें सामाजिक सांस्कृतिक तथा धर्मिक मामलों में हस्तक्षेप किया जा रहा है। उनके मन में सदा यह भय बना रहता था कि कहीं इस अचानक प्राप्त होने वाली विजय को वे उतनी ही जल्दी खो न दे। इसलिए उन्होने सभी प्रकार से लोगों को सन्तुष्ट करने का प्रयास किया। वे लोगों के धार्मिक रीति रिवाजों और सांस्कृतिक संस्थाओं के प्रति आदर प्रकट किया करते थे।

श्री बसु के शब्दों में – "यह वे दिन थे जबकि कम्पनी की ओर से काली देवी को भेंट चढ़ायी जाती थी।"

इस तुष्टिकरण की नीति के कारण ही–प्राच्य भाषाओं की कई संस्थाएं स्थापित की गई। १८८१ ई० में वारेन हेस्टिंगस ने कलकत्ता मदरसा की स्थापना की। इसका

कारण न ही समाज हित और न ही उसका अरबी और भाषाओं के प्रति प्रेम था। इस कालेज के स्थान को न्याय विभाग में अच्छी–अच्छी नौकरियां देकर वह मुसलमानों के एक प्रभावशाली वर्ग को संतुष्ट करना चाहता था। १० वर्ष बाद जोनेथन डंकन जो बनारस संस्कृत कालेज की स्थापना की। उसके पीछे की एक यही चाल थी कि हिन्दुओं के प्रभावशाली वर्ग को संतुष्ट किया जाय।

यही कारण था कि ईसाई मन के चाहते हुए भी ईसाई मत का प्रचार करने में असमर्थ थे, परन्तु ईसाई मत के प्रचारक चुपचाप बैठने वाले नहीं थे। वे बराबर इस प्रयास में थे कि उत्तर भारत में भी अपना जाल बिछाया जाए। उन्होने इंग्लैण्ड में इस बात का बड़ा प्रचार किया कि "काफिरों और म्लेच्छों" को ईसाई बनने का यह स्वर्ण अक्षर हाथ से नहीं जाने देना चाहिए और इस कार्य के निमित्त इंगलैण्ड से "धर्म प्रचारक और स्कूल अध्यापक" भारत को भेजे जांए ईसाई मत के प्रचारकों को इस कार्य में सबसे अधिक सहयोग चार्ल्स ग्राण्ट नामक व्यक्ति से मिला। चार्ल्स ग्राण्ट बहुत दिनों से भारत में रह चुका था और पर्याप्त मात्रा में धन बटोरने के पश्चात अपने देश में आया था। ग्राण्ट ने इंग्लैण्ड लौटने पर "ग्रेट ब्रिटेन की एशियाई प्रजा की सामाजिक दशा का निरीक्षण" नामक पुस्तक लिखी। इस पुस्तक में उसने संयमहीन भाषा में भारत में लोगों विशेषकर हिन्दुओं के रीति–रिवाजों पर भद्दे आक्षेप किये हैं। उनका कथन है कि – "हिन्दू लोग गलत मार्ग अपनाते हैं क्योंकि उनमें अज्ञान भरा हुआ है। इस अज्ञान का कारण यह है कि उनके सामने उनकी भूलें कभी रखी नहीं गयी। उनका नैतिक स्तर ऊंचा करने के लिए पाश्चात्य शिक्षा और उपयुक्त धर्म की

आवश्यकता है। जिस प्रकार अन्धकार को प्रकाश दूर करता है उसी प्रकार अज्ञानता और अनैतिकता को शिक्षा दूर कर देगी।"

कम्पनी के संचालकों व ईसाई पादरियों ने इस प्रचार का धोर विरोध किया। उन्होने शार्प के इस कथन का समर्थन किया कि "हिन्दुओं की धार्मिकता तथा नैतिकता इतनी ही उत्तम है जितनी कि अधिकांश व्यक्तियों की। उनके धर्म परिवर्तन का प्रयास करना अथवा उनको अधिक ज्ञान देना पागलपन ही होगा।" ब्रिटिश सन्स ने ईसाई पादरियो का प्रयास उस समय असफल कर दिया परन्तु ईसाई धर्म प्रचारकों और उनके सहयोगियों ने अपने प्रयत्न जारी रखे और १८१३ ई० ब्रिटिश संसद में यह प्रस्ताव रखा गया कि कम्पनी की सरकार भारतीय लोगों की शिक्षा में रूचि ले और इस कार्य में धन खर्च करें। कम्पनी के संचालकों ने फिर इस बात का विरोध किया कि परन्तु अब स्थिति कुछ और थी। अंग्रेजो के कदम अब भारत के दृढ़ता जसे जम गए थे। और अब वे पाश्चात्य संस्कृति और पाश्चात्य धर्म का प्रसार भारत में बेरोक–टोक कर सकते थे। अतएव १८१३ में आज्ञापत्र के अनुसार–

(i.) ईसाई पादरियों को भारत में धर्म प्रचार की स्वतन्त्रता दे दी गई।

(ii.) शिक्षा को कम्पनी का कर्तव्य बताया गया।

(iii.) भारतीयों में शिक्षा प्रसार के लिए कम से कम एक लाख रूपये की धनराशि निश्चित की गई।

इस प्रकार जिस कार्य को चार्ल्स ग्राण्ट और उसके साथी १७६३ ई० में न कर सके वही कार्य १८१३ ई० को पूरा हो गया। इन्हीं कारण से चार्ल्स ग्राण्ट को आधुनिक शिक्षा का निर्माता कहा जाता है।

चतुर्थ अध्याय

मिशनरियों के शैक्षिक प्रयास (१७६५ से १८१३ तक)

ईस्ट इण्डिया कम्पनी व अंग्रेज मिशनरियों के शैक्षिक प्रयास

१७६५–१८१३ तक कम्पनी की शिक्षा नीति

ईस्ट इण्डिया कम्पनी की मिशनरी प्रयासों के प्रति नीति में बदलाव

मिन्टो का विवरण पत्र

१८१३ का आज्ञा पत्र

मिशनरियों के शैक्षिक प्रयास

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शैक्षिक तथा धर्म परिवर्तन सम्बन्धी प्रयास –

भारत में व्यापार करने आये अंग्रेज व्यापारियों ने १५६६ में ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी का निर्माण किया। इस कम्पनी ने १६०० में इंग्लैण्ड की तत्कालीन महारानी एलिजाबेथ से पूर्वी देशों के साथ व्यापार की अनुमति ली। १६११ ई० मे इसने मछलीपट्टम में व्यापार केन्द्र स्थापित किया। जहां आर्थिक दृष्टि से काफी सफलता मिली। शुरू में ईस्ट इण्डिया कम्पनी एक व्यापारिक संस्था थी। इसके लिए भारतीयों की शिक्षा के लिए कदम उठाना उचित नहीं था। किन्तु एन०एन०ला० ने संकेत किया है– "इन प्रारम्भिक दिनों में भी कम्पनी अपनी सीमा के अन्तर्गत कुछ शैक्षिक तथा भारतीयों को ईसाई बनाने की क्रिया में व्यस्त थी।"

कम्पनी के व्यापारियों ने भारत में अपने प्रतिद्वन्दी पाश्चात्य व्यापारियों का अनुकरण करके उन्होनें भी अपने प्रोटेस्टेंट मिशनरियों को भी इस देश में बुलाया। ऐसा करने में उनके उद्देश्य थे–

१. जिन स्थानों पर अंग्रेज आकर बसे थे, वहां से पुर्तगाल, रोमन, कैथोलिक मिशनरियों का प्रभाव समाप्त करना ।

२. अपनी कम्पनी के कर्मचारियों की धार्मिक शिक्षा, आध्यात्मिक उन्नति करना ।

३. भारतवासियों में अप्रत्यक्ष रूप से इसाई धर्म का प्रचार करना ।

धर्म प्रचार कार्य में सफलता प्राप्त करने के लिए १६१४ से ही कम्पनी ने भारतवासियों को अपने देश प्रोटेस्टेन्ट धर्म का प्रचार करने के लिए प्रशिक्षित करना आरम्भ किया। कुछ भारतीय ईसाईयों को धार्मिक शिक्षा प्राप्त करने के लिए इंग्लैण्ड भेजा गया। १६३६ ई० में आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में आर्च बिशप लार्ड ने अरबी शिक्षा का विभाग स्थापित किया। जिसमें भारत आने वाली मिशनरियों को अरबी भाषा की शिक्षा दी जाती थी, जब सन् १६६८ में कम्पनी के चार्टर का नवीनीकरण हुआ तो उसमें प्रसिद्ध मिशनरी धारा भी जोड़ दी गयी। इस धारा के अनुसार कम्पनी को आदेश दिया गया कि वह भारत के कारखानों में धर्म मंत्रियों की नियुक्ति करें, वे जहां नियुक्त किये जायें वहां की स्थानीय भाषाओं को सीखें। इस चार्टर ने यह भी आदेश दिया कि कारखानों में स्कूल खोले जाय। इस मिशनरी धारा का शैक्षिक महत्व अधिक है। इस धारा ने भारत में अंग्रेजी शिक्षा की नींव डाली। भारत में कम्पनियों के कारखानों में खैरात़ी स्कूलों की स्थापना की गयी, जहां पर कम्पनी के कर्मचारियों के बच्चों को निःशुल्क शिक्षा प्रदान की जाती थी। इन स्कूलों में शिक्षा का माध्यम पुर्तगाली भाषा थी, किन्तु इस भाषा के द्वारा अंग्रेजों को अधिक सफलता नहीं मिली। इसलिए पुर्तगाली भाषा के स्थान पर शीघ्र ही अंग्रेजी को शिक्षा का माध्यम स्वीकार कर लिया गया। भारत में सबसे पुराना चैरिटी स्कूल मद्रास का सेंट मेरी चैरिटी स्कूल है। जो स्टींवेशन के द्वारा १७१५ ई० में स्थापित किया गया। समय–समय पर कम्पनी आर्थिक सहायता भी स्कूलों को देती थी।

अंग्रेजी मिशनरियों ने बंगाल को अपने धर्म प्रचार का मुख्य केन्द्र बनाया। वहां सीरामपुर नामक स्थान के ३ मिशनरी ईसाई धर्म को व्यापक रूप प्रदान करने के लिए अत्यधिक प्रयत्नशील थे। इन मिशनरियों के नाम थे– कैरे, वार्ड और मार्शमैन। ये तीनों मिशनरी सीरामपुर त्रिमूर्ति के नाम से प्रसिद्ध थे। डा० कैरे ने कुछ समय तक वहां पर कार्य किया। उन्होने सन् १८०० ई० में 'हिन्दू मुसलमानों के नाम निवेदन' नामक पुस्तिका प्रकाशित की, उसमें उन्होने मुहम्मद साहब को झूठा पैगम्बर बताया और हिन्दू धर्म को आडम्बर और मिथ्या से पूर्ण बताया, इससे हिन्दू और मुसलमानों में क्रोध की अग्नि भड़क उठी। उसको शान्त करने के लिए मिन्टो ने तीन पादरियों को बन्द करा दिया और उनके धर्म प्रचार कार्य को रोक दिया।

<u>१७६५–१८१३ तक कम्पनी की शिक्षा नीति</u> –

उत्तर पूर्व में अंग्रेजी व्यापारियों ने १६३३ में प्रवेश किया और हरिहरपुरा तथा बालासोर में अपने कारखाने स्थापित किये। इस प्रदेश में अनेक वर्षों तक कम्पनी का व्यापार अनुकूल तथा प्रतिकूल परिस्थितियों में से होकर गुजरता रहा, धीरे–धीरे १७६५ ई० के उपरान्त कम्पनी एक राजनैतिक सत्ता बन गयी और इसकी शिक्षा सम्बन्धी नीतियों में आवश्यक संशोधन हुआ। अब तक कम्पनी का ध्यान यूरोपीय तथा एंग्लो भारतीय बालकों की शिक्षा तक ही सीमित था, किन्तु इसका ध्यान भारतीयों की शिक्षा की ओर भी गया। कम्पनी ने अब यह अनुभव करना प्रारम्भ किया कि एक राजनैतिक सत्ता के रूप में हिन्दू तथा मुसलमान राजाओं की शिक्षा सम्बन्धी परम्पराओं को सुरक्षित रखना चाहिए, क्योंकि उसे हिन्दू एवं मुसलमान शासकों के राज्य

उत्तराधिकार में प्राप्त हुए थे। इन शासकों ने अनेक प्रकार से शिक्षा को प्रोत्साहित किया था। जैसे–पाठशालाएं और मदरसे स्थापित किये थे। विद्वान पंडितों और मौलवियों को उपाधियों से विभूषित किया था और उनको आजीविका चलाने के लिए जागीरें दी। कम्पनी ने विचार किया कि इन परम्पराओं को जारी रखकर ही भारतवासियों की सद्भावना प्राप्त की जा सकती है। यहीं से कम्पनी की नवीन शिक्षा नीति का आरम्भ होता है। इस नीति को निर्धारित करने में दो अन्य तत्वों ने भी योग दिया है।

प्रथम, १७३३ ई० में रेग्यूलेटिंग एक्ट के अनुसार कलकत्ता में एक सर्वोच्च न्यायालय स्थापित किया गया। १७८१ के संशोधित कानून के अनुसार यह निश्चय किया गया कि भारतवासियों के मुकद्मों का निर्णय उनके धर्म, रीति–रिवाजों और रहन–सहन के आधार पर किया जाय, क्योंकि अंग्रेज न्यायाधीश इन बातों से अनभिज्ञ थे। अतः उनकी सहायता के लिए भारतवासियों को शिक्षित करना आवश्यक हो गया। द्वितीय, कम्पनी प्रभावशाली भारतवासियों के पुत्रों को सरकारी पदों पर कार्य करने लिए भी शिक्षित करना चाहती थी और इस प्रकार उच्च वर्गों में विश्वास तथा सहयोग प्राप्त करके भारत में अपने नव स्थापित राज्यों को सुदृढ़ करना चाहती थी, इसलिए यह महसूस किया गया है कि हिन्दू तथा मुसलमानों की उच्च शिक्षा के लिए कुछ उच्च विद्यालयों की स्थापना की जाय। इस भावना से प्रेरित होकर "कलकत्ता मदरसा" और "बनारस संस्कृत कालेज" की स्थापना हुई।

<u>कलकत्ता मदरसा</u> :–

कलकत्ता मदरसा की स्थापना भारतीय मुसलमानों को प्रसन्न रखने के वारेन हेस्टिंग्ज द्वारा हुई थी। इस मदरसा को खोलने का दूसरा उद्देश्य मुसलमान युवकों को राज्य के आकर्षक पदों के लिए तैयार करना था। १७८० ई० में नगर के कुछ लब्ध प्रतिष्ठ मुसलमानों ने उससे प्रार्थना की कि उच्च शिक्षा प्रदान करने के लिए कलकत्ता में एक मदरसा स्थापित किया जाए और मुदगिदउद्दीन नाम एक विदेशी विद्वान की सेवाओं से लाभ उठाया जाए, उसने तत्काल मुदगिद उद्दीन को बुलवाया। उसे मदरसे का प्रधानाचार्य नियुक्त किया और अक्टूबर १७८० ई० में कलकत्ता मदरसा शिक्षण कार्य में लग गया। कम्पनी के संचालकों से मदरसे के व्यय के लिए धन प्राप्ति में विलम्ब होने की आंशका से हेस्टिंग्स ने उसके व्यय का भार अपने ऊपर ले लिया।

प्रारम्भ में इस मदरसे में ४० छात्रों के लिए निःशुल्क भोजन, छात्रावास तथा पुस्तकों की व्यवस्था की गयी थी। परन्तु मुदगिद उद्दीन की ख्याति के कारण जनवरी १७८१ में ही काश्मीर, गुजरात एवं कर्नाटक के छात्र आने लगे। अतः छात्रों की संख्या ४० से बढ़ाकर १०० करना पड़ा। व्यय अधिक हो जाने के कारण हेस्टिंग ने कम्पनी के संचालकों से मदरसे को अपने संरक्षण में लेने की प्रार्थना कीं। उन्होने ने केवल इसकी स्वीकृति दी अपितु हेस्टिंग्स द्वारा व्यय किया हुआ धन भी उसे लौटा दिया। मदरसा की आर्थिक सहायता के लिए एक विशाल भूमि खण्ड द्वारा २६,००० सभी वार्षिक आमदनी हो, निर्धारित की गई और १७८५ ई० में मदरसा के प्रधान की आर्थिक सहायता के लिए भी भूमि निर्धारित की गई। परन्तु उचित प्रबन्ध न हो सकने के कारण इस भूमि को

१८१६ ई० में वापस ले लिया गया और ३०,००० रूपया वार्षिक राजकोष से दिया जाने लगा। किन्तु इस मदरसे की दशा दिन–प्रतिदिन दयनीय होती गई और अन्त में विवश होकर मदरसा के नियंत्रण के लिए एक यूरोपीय सेक्रेटरी की नियुक्ति की गई।

लार्ड हेस्टिंग ने इस कालेज की स्थापना इसलिए की, कि जिससे मुसलमानों को उच्च शिक्षित करके उन्हें उच्च पदों पर आसीन करके कम्पनी के कार्यों में सहायता ली जा सके।

पाठ्यक्रम :–

इस मदरसे में इस्लाम के धर्म सिद्धान्त कानून, ज्योतिष, ज्यामिति, गणित, तर्कशास्त्र, व्याकरण और दर्शन शास्त्र की शिक्षा दी जाती थी तथा अरबी फारसी के माध्यम से काव्यशास्त्र पढ़ाया जाता था। शिक्षकों के अतिरिक्त कुरान पढ़ाने के लिए एक खातिब और नवाज पढ़ाने के लिए एक मुआज्जिन था। मुस्लिम प्रथा के अनुसार प्रार्थना एवं पूजा पाठ के लिए शुक्रवार को अवकाश रहता था। मदरसे का परिणाम यह हुआ कि यह पूरे देश में फैल गया। देश के कोने–कोने से विद्यार्थी अध्ययन के लिए आने लगे। इस मदरसे में उच्च शिक्षा की अवधि ७ वर्ष निर्धारित की गयी थी।

बनारस संस्कृत कालेज :–

कलकत्ता मदरसा के समान बनारस संस्कृत कालेज की स्थापना भी राजनीति से प्रेरित होकर की गयी थी। इस कालेज का शिलान्यास १७६१ में बनारस राज्य के रेजीडेन्ट जोनेथन डंकन ने किया था। जिस प्रकार कलकत्ता

मदरसा में मुस्लिम धार्मिक सिद्धान्तों और कानूनों की शिक्षा देकर मुसलमान नवयुवकों को अंग्रेज न्यायाधीशों को सहायता देने के लिए तैयार किया जाता था। उसी प्रकार बनारस संस्कृत कालेज में हिन्दू नवयुवकों को हिन्दू धर्मशात्र एवं कानून की व्याख्या करने के लिए दीक्षित किया जाता था।

कलकत्ता मदरसा के समान ही बनारस संस्कृत कालेज की स्थापना के पीछे राजनैतिक उद्देश्य था। डंकन ने स्वयं कहा है—इस विद्यालय की स्थापना के दो प्रमुख लाभ होते हैं। दूसरे, इस संस्था से हिन्दू परम्पराओं की रक्षा हो सकेगी तथा न्यायाधीशों के सहायक मिलते रहेगे। हिन्दू नवयुवकों का धर्मशास्त्रों तथा कानून की व्यवस्था के लिए प्रशिक्षित करना ही इस कालेज की स्थापना का प्रमुख उद्देश्य था। प्रथम वर्ष इस कालेज को १४,००० रूपया अनुदान के रूप में दिया गया, पर १७९२ इस धनराशि को बढ़ाकर २०,००० रूपया वार्षिक कर दिया गया।

प्रारम्भ में इस कालेज का प्रबन्ध पंडितों ने किया, लेकिन जब इस दायित्व को निभाने में असमर्थ सिद्ध हुए तो इन पाठशालाओं को प्रबन्ध के रूप में एक अंग्रेज व्यक्ति की नियुक्ति कर दी गयी।

कालेज के पाठ्य विषयों में हिन्दू धार्मिक सिद्धान्त, तर्कशास्त्र, दर्शनशास्त्र चिकित्सा शास्त्र, गणित, संगीत, इतिहास, कविता और कानून सम्मिलित थे। कालेज का समस्त प्रबन्ध धर्मशास्त्रों के नियमों पर और शिक्षा मानव धर्म पर आधारित थी।

<u>कम्पनी की नीति में अन्तर्बाधायें</u> :–

स्पष्टतः कम्पनी सरकार भारतीय शिक्षा का भार उठाने में अभी कतरा रही थी। इसके निम्नलिखित कारण थे–

(अ) कम्पनी सरकार पूरी तरह से इंग्लैण्ड में आदर्शों का अनुगमन कर रही थी, उस समय इंग्लैण्ड की सरकार ने वहां की शिक्षा को शासन का अंग नहीं स्वीकार किया था। अतः कम्पनी सरकार भी इस कार्य को अपना दायित्व नहीं समझ रही थी।

(आ) दूसरी, कम्पनी यह नहीं चाहती थी कि भारतीयों को शिक्षित किया जाय। क्योंकि शिक्षित हो जाने पर उनके द्वारा स्वतन्त्रता के लिए प्रयास सम्भव हो सकते थे। इसलिए कम्पनी सरकार सिर्फ उतने ही शिक्षित आदमी चाहती थी, जितनों से वह अपना उद्देश्य भली प्रकार पूरा करा सके।

(इ) तीसरे, कम्पनी सरकार का एक आरोप यह भी था कि भारतवासी स्वयं शिक्षित नहीं होना चाहते थे। शिक्षा के प्रति अपेक्षित जागरूकता की उनमें कमी थी।

(ई) कम्पनी सरकार का पूरा ध्यान धनोपार्जन पर केन्द्रित था। भारतवासियों की शिक्षा पर अधिक खर्च करना वह बेकार समझती थी। लेकिन कुछ काल बाद जब इंग्लैण्ड में शिक्षा सुधारवादी आन्दोलन का प्रारम्भ हुआ तो कम्पनी सरकार को भी अपना ख्याल बदलना पड़ा और विवश

होकर कम्पनी सरकार को इस दायित्व को उठाना पड़ा। इस दिशा में लार्ड मिन्टो द्वारा महत्वपूर्ण भूमिका निभाई गयी। कम्पनी की उन्नति दिन प्रतिदिन बढ़ती गई। कम्पनी ने १८०० ई० में कलकत्ते में "विलियम कालेज" की स्थापना की। यह कालेज शिक्षा का महत्वपूर्ण केन्द्र बना। इसका प्रमुख उद्‌देश्य कम्पनी के तरूण कर्मचारियों को हिन्दू और मुस्लिम कानूनों, भारतीय इतिहास, अरबी, फारसी, संस्कृत और भारतीय भाषाओं की शिक्षा देना था। इसमें बंगाल साहित्य और अन्य भारतीय भाषाओं के विकास में अति सराहनीय योग दिया और उनसे और उनसे सम्बन्धित पुस्तकें प्रकाशित की।

इस कालेज में डा० गिलक्राइस्ट, डा० केरे, कोलब्रुक, और पंडित ईश्वर चन्द्र विद्यासागर ऐसे विद्वान शिक्षक थे। सन् १८१८ ई० में कम्पनी ने मद्रास में 'फोर्ट सेन्ट जार्ज' नामक कालेज की स्थापना की गई। इस प्रकार कलकत्ता और मद्रास की शिक्षा को काफी प्रगतिशील बनाने का प्रयत्न किया गया। इन दो स्थानों के अलावा बम्बई में भी शिक्षा प्रसार सम्बन्धी प्रयत्न किये गये। सन् १८१८ ई० में यहां एक स्कूल की स्थापना की गयी।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी की मिशनरी प्रयासों के प्रति नीति में बदलाव :–

सन् १८१३ ई० के पूर्व मिशनरियों के शिक्षा सम्बन्धी क्रियाओं में शिथिलता आने लगी और उनके उत्साह में भी कमी दिखाई देने लगी थी। इसका सबसे प्रमुख कारण कम्पनी की मिशनरियों के प्रतिकूल तथा विषम

मनोवृत्ति थी किन्तु जैसे ही कम्पनी ने एक राजनीतिक सत्ता का रूप ग्रहण किया वैसे ही कुछ परिवर्तन दिखाई पड़ने लगे। राजनीतिक सत्ता प्राप्त कर लेने के पश्चात कम्पनी ने राजनीतिक कारणों को दृष्टिगत रखते हुए अपनी सामान्य नीति में कुछ परिवर्तन करना चाहा। अब वह धार्मिक तटस्थता की नीति को अपनाने के लिए जागरूक हो उठी अतः उसने धर्म परिवर्तन के सारे कार्यक्रमों का परित्याग करना चाहा और मिशनरियों के साथ अपने सम्बन्धों को ध्यान करना चाहा और इसी बीच में बैलौर में सिपाही गदर भी हुआ जिसके कारण और भी कम्पनी धर्म परिवर्तन नीति की घोर विरोधी हो गयी और मिशनरियों को अपनी सीमा के यथा सम्भव बाहर रखने का प्रयास किया। इसी प्रकार से १८०८ में मिशनरियों ने 'हिन्दू और मुसलमानों के नाम सन्देश' नाम नामक एक पुस्तिका प्रकाशित की। इसमें मुहम्मद साहब को झूठा पैगम्बर बताया गया। और हिन्दू धर्म की निन्दा की गई। इसे हिन्दुओं और मुसलमानों में इतनी उत्तेजना फैली कि उसे शान्त करने के लिए लार्डमिन्टों ने मिशनरियों का प्रेस जब्त करा लिया और उनको बन्दी करवा के कलकत्ता बुला लिया। मिशनरियों को कम्पनी की दमन नीति से बहुत असन्तोष हुआ।

इस प्रकार १७८१ और १७६१ के बीच शिक्षा प्राच्य नीति को ग्रहण करने के कारण भी मिशन स्कूलों को कम्पनी की सहानुभूति और सम्बल से वंचित कर दिया गया। मिशनरियों को कम्पनी की ये नीतियाँ पसन्द नहीं आयी और इन लोगों ने कम्पनी की आलोचना करना प्रारम्भ कर दी। सन् १७६३ ई० में जब

कम्पनी का आज्ञापत्र ब्रिटिश सांसद के सामने नवीनीकरण के लिए आया तब *विल्बर फोर्स ने उसमें शिक्षा सम्बन्धी एक धारा जोड़ने के विचार से निम्नांकित प्रस्ताव किया– ''ब्रिटिश व्यवस्थापिका का यह विशेष तथा अनिवार्य कर्तब्य है कि वह समस्त उचित एवं विवेकपूर्ण साधनों द्वारा भारत में ब्रिटिश राज्य के हित एवं समृद्धि के लिए कार्य करें, और इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए ऐसे साधनों को अपनाये, जिनसे भारतीयों के ज्ञान, धर्म और नैतिकता का स्तर ऊँचा उठे।'' इस प्रस्ताव द्वारा उन्होंने ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत रहने वाले भारत वासियों के धार्मिक तथा नैतिक उन्नयन के शिक्षा सम्बन्धी जिम्मेदारियों को ब्रिटिश संसद का महत्वपूर्ण कर्तब्य बतलाया और आगे चलकर उन्होंने इस बात की ओर भी संकेत किया कि कम्पनी के संचालकों को समय–समय से ऐसे उपयुक्त तथा कुशल व्यक्तियों को भारत भेजना चाहिए जो कि स्कूल के अध्यापक मिशनरी आदि के कार्य को कर सके कम्पनी के संचालकों ने इस प्रस्ताव का घोर विरोध किया। वे धार्मिक तटस्थता की नीति को त्यागने के लिए तैयार न थे और वे भारतीयों को शिक्षित करने की जिम्मेदारियों को भी वहन नहीं करना चाहते थे। कम्पनी के संचालकों ने इस प्रस्ताव का विरोध करते हुए कहा–''हिन्दुओं की अपने धर्म और नैतिकता की उतनी ही उत्तम प्रणाली है, जितनी कि अधिकांश

---

* विल्बर फोर्स : ''सलेक्शन फ्राम एजुकेशनल रिकार्ड'' वाल्यूम.७ पृ.सं.–१७

व्यक्तियों की है, और उनके धर्म परिवर्तन का प्रयास करना या उनकों अधिक ज्ञान देना पागलपन होगा।"

लोक सभा के सदस्य रेन्डल जेन्शन का मत था– "हमने अमेरिका के उपनिवेशों को अपनी भाषा का प्रसार करने के कारण खो दिया। अतः हमें भारत में ऐसी मूर्खता नहीं करनी चाहिए।"

इस प्रकार से विल्बर फोर्स का प्रस्ताव पराजित हो गया। इस पराजय के कारण मिशनरियों के उत्साह में बहुत बड़ा धक्का पहुँचा। इसके फलस्वरूप मिशनरियों तथा कम्पनी के अफसरों को पारम्परिक सम्बन्ध तनावपूर्ण हो गया।

इस बात को भी व्यक्त करने में कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि कम्पनी ने १७६३ और १८१३ के बीच किसी मिशनरी को अपनी सीमा में कार्य करने की आज्ञा प्रदान नहीं की, बहुत से मिशनरियों को ज़ो लोगों को ईसाई धर्म स्वीकार कराने में सक्रियता पूर्वक लगे हुए थे, निष्काषित कर दिया और मिशन स्कूलों को आर्थिक सहायता देना बन्द कर दिया। भारत में इस अन्याय के विरोध में आवाज के लिए सशक्त मिशनरियों की कमी थी। इसलिए उन लोगों ने इंग्लैण्ड में एक तीव्र अभियान चलाया जिसमें कि संसद बाध्य होकर ऐसे अधिनियम का निर्माण करे, जिससे उनकों अपने कार्य में अनावश्यक सहायता तथा स्वतन्त्रता मिले। ऐसे संघर्ष करने वालों में चार्ल्स ग्रान्ट का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है जो भारत की वर्तमान शिक्षा के जनक माने जाते है, वस्तुतः भारत में अंग्रेजी

शिक्षा पद्धति की अग्रिम रूप रेखा का निर्माण ग्रान्ट ने ही किया इसलिए उसको भारत में आधुनिक शिक्षा का जन्मदाता कहा जाता है।

चार्ल्स ग्रान्ट के विचार –

चार्ल्स ग्रान्ट के कर्मचारी और व्यवसायी के रूप में भारत में लगभग २३ वर्ष रह चुकने के कारण यहां की परिस्थितियों से पूर्ण तथा परिचित था। इंग्लैण्ड लौटने पर उसने "ग्रेट ब्रिटेन की एशियाई प्रजा सामाजिक दशा पर प्रक्षेप" नामक पुस्तक लिखी जिसमे भारतीय रीति रिवाजों पर गहरा आक्षेप लगाया गया और भारत में पाश्चात्य शिक्षा और धर्म के प्रचार को नैतिक स्तर को ऊपर उठाने के लिए आवश्यक बताया। उसने उपर्युक्त पुस्तिका द्वारा भारतीयों की स्थिति पर प्रकाश डाला।

* 'यूरोप के सबसे खराब भागों में निस्सन्देह अनेक मनुष्य है जो सच्चे ईमानदार और शुद्ध हृदय वाले है। बंगाल में तो सच्चा और ईमानदार मनुष्य अलभ्य है, मुझे भय है कि जीवन में सब प्रकार से पवित्र आचरण वाला मनुष्य अप्राप्य है। हिन्दुस्तान के निवासी को दी गई शक्ति सदैव अत्याचार पूर्ण रीति से प्रयोग की जाती है। सभी स्थितियों में सभी प्रकार के पदों का प्रयोग धनोपार्जन के लिए किया जाता है। न्याय सामान्य रूप से व्यापार की वस्तु हो गया है।"

---

* चार्ल्स ग्रान्ट, "आँबजरवेशन ऑन द स्टेट ऑफ सोसाइटी एमंग एशिएटीक सब्जेक्ट आँफ ग्रेट ब्रिटेन।"

यद्यपि ग्रान्ट द्वारा ऑबजरवेशन में कई ऐसी बाते भी है जो आपत्तिजनक तथा असम्मानजनक है, फिर भी ग्रान्ट को क्षम्य माना जा सकता है क्योंकि अन्ततः उसका उद्देश्य भारत वासियों को शिक्षित करना उनके नैतिक स्तर को ऊँचा उठाना तथा उन्हें जागृत करना था। उस समय भारत की निन्दयनीय स्थिति जो थी वह तो थी ही उनमें अनैतिकता भ्रष्टाचार और अज्ञान की वृद्धि हो रही है। ग्रान्ट का विश्वास था कि पाश्चात्य शिक्षा और ईसाई धर्म द्वारा भारतवासियों के नैतिक स्तर को ऊँचा उठाया जा सकता है। अज्ञानता को दूर करने का वास्तविक उपचार ज्ञान का प्रसार है। हिन्दू इसी लिये गलती करते हैं, क्योंकि वे अज्ञान है और उनकी गलतियों का उचित प्रकार से कभी भी उनके समक्ष नहीं रखा गया है। उनकों हमारे प्रकाश और ज्ञान का दिया जाना ही उनके लिए सर्वोत्तम उपचार होगें।"

भारत की दयनीय दशा का चित्रण करने के बाद ग्रान्ट इसके कारणों का विश्लेषण करता है और उपचार भी बतलाता है। इसलिंए ग्रान्ट आधुनिक भारतीय शिक्षा के इतिहास में चार्ल्स ग्रान्ट के इस 'आँबजरवेशन' का अत्यधिक महत्व है। दूसरे शब्दों में आधुनिक शिक्षा पद्धति ग्रान्ट की इसी रचना का परिणाम है। एक स्थान पर लिखा है,–"भारत को सामाजिक दशा सुधारने और भारतवासियों के नैतिक स्तर को उन्नत बनाने के लिए पाश्चात्य शिक्षा और उपयुक्त धन की बहुत आवश्यकता है। जिस तरह से प्रकाश अँधेरे को दूर कर देता है ठीक उसी तरह यह शिक्षा भी भारत में व्याप्त अज्ञानता और दुराचार को दूर कर देगी।"

शिक्षा के माध्यम पर विचार करते हुए यद्यपि ग्रान्ट ने अंग्रेजी के साथ देशी भाषाओं को भी माध्यम रूप से स्वीकार किया है। किन्तु महत्व उसने अंग्रेजी भाषा को ही दिया है। पाठ्य विषय के सम्बन्ध में ग्रान्ट का सुझाव है कि अन्य विश्वासों का अन्त करने तथा कृषि एवं औद्योगिक विकास के लिए प्राकृतिक विज्ञान तथा यांत्रिक अविष्कारों के ऊपर बल दिया जाय। इस संदर्भ में उनका विचार था कि उपयुक्तता की दृष्टि से अंग्रेजी को ही माध्यम बनाना चाहिए। क्योंकि उनमें मतानुसार विज्ञान, दर्शन, धर्म समुचित रूप से साहित्य विषयक ज्ञान अंग्रेजी के ही माध्यम से ही दिया जा सकता है और भारतवासियों के विचारों में परिवर्तन लाया जा सकता है। इसलिए उसने आरम्भ में इस बात पर विशेष बल दिया कि योग्य अंग्रेजी के अध्यापकों की नियुक्ति की जाय। फिर आगे चलकर स्वयं भारतीय शिक्षक इस कार्य को चलाने में समर्थ हो जायेंगे। ग्रान्ट की प्रायः सभी बातों को भविष्य में मान लिया गया। वस्तुतः भारत में अंग्रेजी शिक्षा पद्धति की अग्रिम रूपरेखा का निर्माण ग्रान्ट ने ही किया इसीलिए उसको भारत में आधुनिक भारतीय शिक्षा पद्धति का निर्माता भी कहा जाता है। हालाकि ग्रान्ट के अनुसार सबसे मूल्यवान विषय ईसाई धर्म ही है।

<u>मिन्टो का विवरण पत्र</u> :–

जिस समय इंग्लैण्ड में यह आन्दोलन चल रहा था कि भारतवासियों की शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी हो और उनमें ईसाई धर्म का प्रचार किया जाय उसी समय भारत में कम्पनी के पदाधिकारीगण इस बात के लिए प्रयत्नशील थे कि

भारतवासियों को भारतीय पद्धति द्वारा शिक्षा दी जाए और उनके धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप न किया जाय। इन लोगों ने यह अनुभव किया कि बनारस संस्कृत कालेज और कलकत्ता मदरसा भारत की आवश्यकताओं को देखते हुए अपर्याप्त है। कलकत्ता मदरसा और बनारस संस्कृत कालेज का निर्माण करके वे शिक्षा में प्राच्यवादी नीति के विचार को व्यक्त कर चुके थे। वे शिक्षा में प्राच्यवादी नीति के विचार को व्यक्त कर चुके थे। वे इस बात पर बल दे रहे थे कि इस प्रकार की अन्य शिक्षा संस्थाओं का प्रबन्ध करके प्राच्य शिक्षा प्रणाली को प्रोत्साहित किया जाय। इस प्रकार दोनों देशों में दो विरोधी विचार धारायें कार्य कर रही थी।

पदाधिकारीगण ने हिन्दुओं तथा मुसलमानों की शिक्षा के पतन पर क्षोभ प्रकट किया इन लोगों द्वारा बड़े धन राशि की मांग की जिसके द्वारा देश की प्राचीन शिक्षा को पुर्नजीवित किया जा सके फिर से प्राप्त होना चाहिए। यह वास्तव में अत्यन्त दुःख का विषय है कि राष्ट्र जो साहित्य के सृजन तथा प्रेम अपने साम्राज्य में सुविख्यात है, वह हिन्दुओं के साहित्य के पुनरूत्थान के लिए कुछ न कर सका।

इस समय भारत ने कम्पनी का सर्वोच्च अधिकार लार्ड मिन्टों थे। मिन्टों स्वयं प्राच्य साहित्य के प्रशंसक थे और यह अनुभव किया कि उसका अध्ययन पश्चिमी राष्ट्रों के लिए लाभप्रद होगा। इसलिए वह चाहते थे कि अंग्रेजों को

भारतीय संस्कृति की सुरक्षा तथा प्रोत्साहन के लिए हर प्रकार के सम्भव प्रयत्न करना चाहिए।

लार्ड मिन्टों ने ६ मार्च १८११ के अपने विवरण पत्र में भारतीय शिक्षा की दयनीय दशा का चित्र अंकित करके कम्पनी के संचालकों को प्रेषित किये है। उन्होंने लिखा है–

(१) भारत के निवासियों में विज्ञान और साहित्य का उत्तरोत्तर का पतन हो रहा है। विद्वानों की संख्या न केवल कम हो गई है, अपितु उनमें ज्ञान की परिधि भी संकीर्ण होती जा रही है। इस स्थिति का तात्कालिक परिणाम है अनेक अमूल्य ग्रन्थों का प्रयोग न किया जाना और उनको इस बात का भय है कि यदि सरकार नें शीघ्र सहायता प्रदान की तो ग्रन्थों और उनकी व्याख्या करने वाले व्यक्तियों के अभाव में शिक्षा का पुनरूद्धार असम्भव हो जायेगा।

(२) भारत में साहित्य की उपेक्षा का प्रधान कारण इस प्रकार के उत्साह की कमी है। जो कि देशी राजाओं, जमीदारों तथा ताल्लुकेदारों से मिला करता था। इस प्रकार का उत्साह फिर से प्राप्त होना चाहिए।

(३) यह वास्तव में अत्यन्त दुख का विषय है कि एक राष्ट्र जो साहित्य के सृजन तथा प्रेम के लिए अपने साम्राज्य में सुविख्यात है, वह हिन्दुओं के साहित्य के पुनरूत्थान के लिए कुछ न कर सका।

<u>१८१३ के आज्ञापत्र में मिशनरी प्रयासों का सांराश</u> :–

प्रत्येक दस वर्षों में पश्चात ईस्ट इण्डिया कम्पनी के आज्ञा पत्र का संशोधन एवं पुनरावर्तन किया जाता था। पुनरावर्तन करने का अधिकार इंग्लैण्ड की लोक सभा को होता था। सन् १८१३ का आज्ञा ब्रिटिश कालीन शिक्षा के इतिहास में एक परिवर्तन बिन्दू कहा जाता है। क्योंकि दो प्रकार की विचारधाराओं पाश्चात्य तथा प्राच्य के संघर्ष के कारण भारतीय शिक्षा की समस्या जटिल हो गई एक ओर पाश्चात्य विचार धारा के सम्पर्क ग्रान्ट और उसके साथ भारतीयों में अंग्रेजी शिक्षा तथा ईसाई धर्म प्रचार पर जोर दे रहे थे और दूसरी ओर प्राच्यवादी, जैसे मिन्टो पिन्सेप तथा विल्सन आदि भारतीय साहित्य एवं शिक्षा के पुनरूद्धार एवं विकास पर बल दे रहे थे। इस पृष्ठ भूमि के सन्दर्भ १८१३ ई० में कम्पनी का आज्ञा–पत्र पुर्नसंशोधन के लिए संसद में लाया गया। इसमें दो शैक्षिक समस्याओं पर वाद विवाद हुआ।

(अ) क्या मिशनरियों को भारत में भारतीयों की शिक्षा तथा धर्म परिवर्तन के लिए कार्य करने की अनुमति देनी चाहिए।

(आ) क्या कम्पनी को भारतीयों की शिक्षा की जिम्मेदारी स्वीकार करनी चाहिए यदि हाँ तो इसके शैक्षिक क्रिया कलाप का क्या स्वरूप तथा क्षेत्र होना चाहिए।

इस आज्ञा पत्र पर पर्याप्त विरोध हुआ परन्तु अन्त में ग्रान्ट तथा विल्वर

फोर्स के दल को विजय प्राप्त हुई। इस आज्ञा पत्र के सम्बन्ध में * नुरूल्ला तथा नायक ने लिखा है– "१८१३ के आज्ञा पत्र ने भारतीय शिक्षा शिक्षा के इतिहास एक नई दिशा में मोड़ा।"

अब तेरहवें प्रस्ताव के अनुसार मिशनरियों को भारत में प्रवेश तथा रहने की अनुमति प्राप्त हो गई। वे अब उपदेश दे सकते थे, चर्च की स्थापना कर सकते थे और सभी आध्यात्मिक कर्तब्यों तथा कार्यों का निर्वाह कर सकते है। दूसरे शब्दों में वे अपने धर्म प्रचार के व्यवसाय को व्यापक अर्थों में कर सकते है।

दूसरे विषय के सम्बन्ध में कम्पनी के संचालकों ने अपना विरोध व्यक्त किया उन दिनों शिक्षा इंग्लैण्ड में राज्य की जिम्मेदारी समझी जाती थी इसलिए ईस्ट इण्डिया कम्पनी भी भारतीयों की शिक्षा की जिम्मेदारी स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थी।

दूसरे, विषय के सम्बन्ध में कम्पनी के संचालकों ने अपना विरोध व्यक्त किया उन दिनों शिक्षा इंग्लैण्ड में राज्य की जिम्मेदारी समझी जाती थी, इसलिए ईस्ट इण्डिया कम्पनी भी भारतीयों की शिक्षा की जिम्मेदारी स्वीकार करने के लिये तैयार नहीं थीं । दूसरे कम्पनी परोपकारिता की भावना की अपेक्षा आर्थिक विचारों से अधिक

---

* नुरूल्लाह एण्ड नायक – "द चार्टर एक्ट ऑफ १८१३ फ्राम ए टर्निंग प्वाइन्ट इन हिस्ट्री ऑफ इण्डियन एजुकेशन", पृ.सं. ८२

प्रभावित थी। इस वह इस अतिरिक्त आर्थिक बोझ उठाने के लिए तैयार न थी। तीसरे, भारत के लोगों स्वयं इस विषय में उदासीन थे। भारतीय केवल शान्ति और व्यवस्था के अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहते थे। क्योंकि वे मुगल बादशाहों अनाचारों तथा अत्याचारों से पूर्णतया दब चुके थे। इन कारणों से कम्पनी भारतीयों की शिक्षा की जिम्मेदारी नहीं ले रही थी किन्तु मिशन धाराओं के विरोधियों ने भारत में मिशनरियों की शैक्षिक प्रयास का विरोध करने के लिए एक प्रतिद्वन्दी संस्था की आवश्यकता महसूस की फलतः इन लोगों ने उक्त आज्ञा पत्र में ४३ वीं धारा जुड़वा दी इस धारा के अनुसार–

''प्रत्येक वर्ष कम से कम एक लाख रूपये भारतीय साहित्य के पुनरूत्थान के लिये भारतीय विद्वानों को प्रोत्साहित करने के लिए तथा अंग्रेजी प्रदेशों के निवासियों के ज्ञान विज्ञान की उन्नति करने के लिए व्यय की जायेगी।''

इस धारा के प्रस्तावकर्ता स्पष्ट तथा भारतीय विचार धारा से प्रभावित थे, क्योंकि इन लोगों ने इसमें भारतीय साहित्य के सुधार तथा पुनरूत्थान तथा भारतीय विद्वानों के प्रोत्साहन की बात की है। किन्तु १८१३ के आज्ञा पत्र को नहीं पूँछा गया था इस आज्ञा पत्र में अंग्रेजी शासन क तीन दृष्टिकोण थे।

(१) संस्कृत और अरबी भाषाओं के साथ–साथ पश्चिम विद्वानों की शिक्षा भी समुचित रूप में हो सकी, जिससे वे भी भारतीय भाषाओं का ज्ञान प्राप्त कर सके।

(२) इस आज्ञान पत्र में ''चार्ल्स ग्रान्ट'' की शिक्षा नीति को भी सफलता मिली क्योंकि वह भारत में अंग्रेजी भाषा का प्रचार करना

चाहता था और विज्ञान की शिक्षा भी अंग्रेजी के माध्यम से प्रदान करने का पक्षपाती था इस आज्ञा में इन दोनों बातों की सुविधा थी।

(३) 'मुनरों' भारत वर्ष में शिक्षा का माध्यम भारतीय भाषाओं को ही रखना चाहता था। वह ज्ञान विज्ञान का प्रचार भी भारतीय भाषाओं के माध्यम से ही करने का पक्षपाती था।

१८१३ के चार्टर में उपर्युक्त सभी बातों का समावेश किया गया था इस ''आज्ञा पत्र'' में ईस्ट इण्डिया कम्पनी की शिक्षा नीति के तीन प्रमुख उद्देश्य थे–

१– भारतीय विद्वानों का सम्मान करना।

२– भारतीय ज्ञान विज्ञान की रक्षा करना।

३– भारत के विज्ञान के प्रचार की व्यवस्था करना।

इस प्रकार से १८१३ का आज्ञापत्र भारतीय शिक्षा के इतिहास को मोड़ देने वाला महत्वपूर्ण बिन्दू है। इसके साथ ग्रान्ट तथा बुल्वर फार्स के द्वारा लगभग बीस वर्ष के अभियान की समाप्ति हुई। इस आज्ञा पत्र के अनुसार भारतीयों की शिक्षा की जिम्मेदारी कम्पनी के कर्तब्यों के अन्तर्गत आ गई। अब अपेक्षाकृत बड़ी धनराशि शैक्षिक क्रियाओं के लिए प्रति वर्ष लगी मिशनरी भारत में अधिक से अधिक संख्या में आने लगे और अनेक अंग्रेजी स्कूल खोल कर वर्तमान शिक्षा प्रणाली की नींव डाली।

पाँचवा अध्याय

मिशनरियों के शैक्षिक प्रयास (१८१३–१८५३)

अंग्रेज मिशनरियों के शैक्षिक प्रयास (१८१३–१८३३)

बंगाल में मिशनरियों के शैक्षिक प्रयास

बम्बई में मिशनरियों के शैक्षिक प्रयास

मद्रास में मिशनरियों के शैक्षिक प्रयास

अन्य स्थानों में प्रयत्न

मिशनरी विद्यालय की विशेषता

१८३३ का आज्ञापत्र

मिशनरियों के शैक्षिक प्रयास (१८३३–१९५३)

मिशनरियों के शैक्षिक प्रयास

अंग्रेज मिशनरियों के शैक्षिक प्रयास (१८१३–१८३३)

यूरोपीय जातियों की धर्म प्रचार की उत्कण्ठा धार्मिक प्रचार के लिए की गई शिक्षा व्यवस्था में वर्णित कर चुके है। वास्तव में शिक्षा के माध्यम से धर्म प्रचार का उनका कार्य उनकी धार्मिक भावना की गहनता का परिचायक है।

सन् १८१३ ई० के आज्ञा पत्र के अनुसार उनको भारत रहकर धर्म प्रचार करने की पूरी तौर पर स्वतन्त्रता प्रदान कर दी गई। इसका परिणाम यह हुआ कि प्रायः सम्पूर्ण देश में ईसाई मिशनरियों का जाल फैला गया। उनका प्रमुख उद्देश्य ही धर्म का प्रचार करना एवं भारतवासियों को अपने धर्म से दीक्षित करना था, अतः उन्होने भारतीयों को ईसाई धर्म में दीक्षित करने के लिए शिक्षित देशवासियों की आवश्यकता का अनुभव कर भारतीय शिक्षा व्यवस्था पर ध्यान दिया। वे शिक्षा को साधन बनाकर भारतीयों से सम्पर्क स्थापित करते थे उन्हें अपने धर्म प्रचार कार्य के लिए शिक्षित भारतीयों की भी आवश्यकता थी अतः उन्होंने देशी भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाकर और इन भाषाओं में पाठ्य पुस्तकों शब्द कोषों, व्याकरण सम्बन्धी ग्रन्थों की रचना की मिशनरियों के इस कार्य ने भारत में शिक्षा प्रसार में महान योगदान दिया। विभिन्न प्रान्तों में उनके द्वारा किये गये शिक्षा सम्बन्धी कार्य सराहनीय थे जो निम्न प्रकार से है–

<u>बंगाल में मिशनरियों के शैक्षिक प्रयास</u> :—

बैपटिस्ट मिशन ने बंगाल प्रान्त में सीरामपुर में बड़ी तीव्र गति से धर्म प्रचार करना प्रारम्भ किया और १८१४ ई० में लगभग १५ स्कूल खोले तथा १८६८ ई० में बंगला भाषा में समाचार दर्पण नामक एक समाचार पत्र निकालना प्रारम्भ किया। साथ ही साथ इन मिशनरियों ने सन् १८१७ में भारत में प्रथम मिशन कालेज सीरामपुर कालेज की स्थापना की इस कालेज का मूल उद्देश्य भारतीयों को पाश्चात्य शिक्षा प्रदान करना था। पर वास्तव मे इसमें भारतीयों तथा ऐंग्लों इण्डियन बालकों को धर्म प्रचार की शिक्षा दी जाती थी।

बंगाल में लंदन मिशनरी सोसायटी एवं चर्च मिशनरी सोसाइटी भी कार्य कर रही थी लंदन मिशन सोसाइटी ने १८१४ से १८१८ ई० के बीच त्रिपुरा और उनके निकटवर्ती प्रदेश में प्रारम्भिक शिक्षा से सम्बन्धित ३६ विद्यालयों का शिलान्यास किया। इन विद्यालयों में ३,००० विद्यार्थी शिक्षा ग्रहण करते थे। चर्च मिशनरी सोसाइटी ने वर्दवान और उसके आस–पास ७० वर्नाक्यूलर स्कूल खोले। जहाँ पर शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों की संख्या १००० (एक हजार) थी।

बरहम व भवनीपुर में भी स्कूलों की स्थापना की गई। लंदन मिशनरी सोसाइटी तथा चर्च मिशन सोसाइटी दोनों ने लड़कियों की शिक्षा को भी प्रोत्साहन दिया और १८४० ई० में लड़कियों के लिए २७ विद्यालयों की स्थापना की गई। जिसमें लगभग ५०० छात्रायें शिक्षा ग्रहण करती थी। सन् १८२० में शिवपुर में 'बिशप कालेज' की स्थापना की गई।

बंगाल में शिक्षा का प्रसार में सबसे अधिक योग देने वाला स्काटलैण्ड का मिशनरी अलेक्जेन्डर डफ था। भारत में आते समय इसकी अवस्था २४ वर्ष की थी। उसने शिक्षा का कार्य बड़े उत्साह के साथ किया। उसका कहना था कि पश्चिम और विशेष रूप से बाइबिल की कृपा से ही भारतीयों को मोक्ष प्राप्त हो सकता है। उसने कलकत्ते में स्काट चर्च का प्रति–स्थापना भी किया था जिसमें शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी थी। तथा बाइबिल का अध्ययन अनिवार्य था। इसके शिक्षा सम्बन्धी कार्य की सराहना अमेरिकन विद्वान डा० जेलनर अड्वे ने अपनी पुस्तक 'भारत में शिक्षा' में की है।

मिशनरियों के शैक्षिक प्रयास बम्बई में :–

बंगाल की अपेक्षा बम्बई में मिशनरियों को कार्यक्रम व्यापक था शिक्षा के क्षेत्र मे अमेरिकन मिशन तथा स्काटिश मिशन के प्रयत्न सराहनीय थे। अमेरिकन मिशन ने सन् १८१५ ई० में लड़को के लिए एक स्कूल की स्थापना की। स्त्री शिक्षा के क्षेत्र इन मिशन का कार्य सराहनीय था। सन् १८२४ और १८२६ बीच इस मिशन द्वारा ६ बालिका विद्यालयों की स्थापना की गई। सन् १८२६ ई० में डा० बिल्सन ने बम्बई में लड़कियों के लिए ६ तथा १८३२ ई० मे एक स्कूल की स्थापना की। चर्च मिशन सोसाइटी ने भी पूना तथा नासिक में लड़कों तथा लड़कियों के लिए शिक्षालयों की स्थापना की। इसके अलावा आपटिस प्रस्विटेरियन मिशनरी सोसाइटी ने कठिया बाड़ में अंग्रेजी तथा वर्ना क्यूलर स्कूल खोले। चर्च मिशनरी सोसाइटी ने बम्बई, थाना, बेसीन एवं नासिक में लड़के

लड़कियों के लिए स्कूल खोले। मिशनरियों द्वारा स्थापित विद्यालयों की यह विशेषता थी कि यहां शिक्षा का माध्यम स्थानीय तथा प्रान्तीय भाषाएं थी पाठ्यक्रम विस्तृत था। भूगोल, इतिहास, व्याकरण आदि विषयों पर बल दिया जाता था। अधिकांश विद्यालयों में शिक्षा प्रणाली का स्वरूप आधुनिक था।

मद्रास में मिशनरियों के शैक्षिक प्रयास :–

मद्रास प्रान्त में वैसलियन मिशन ने शिक्षा का कार्य उत्साह के साथ प्रारम्भ किया। सन् १८१७ ई० में हग ने इंग्लैण्ड की धर्म प्रचारक समिति की सहायता से मद्रास में ६ विद्यालयों की स्थापना की जिसमें २८३ विद्यार्थी पढ़ते थे। "चर्च मिशनरी सोसाइटी ने मद्रास में १०७ स्कूल खोले जिनमें पढ़ने वाले विद्यार्थियों की संख्या ३,८८२ थी "वेसलियन मिशन" ने मद्रास और नागापट्टम में दो–दो विद्यालयों की स्थापना की इसके अतिरिक्त मिशनरियों ने तिनावेली, कुम्भकोणम् चित्तूर, सेलम, कोयम्बटूर, विशाखापट्नम, कड़पा तथा विलारी में भी अनेक विद्यालयों की स्थापना की।

अन्य स्थानों में प्रयत्न –

मिशनरी सोसायटियों ने सन् १८२३ ई० तक अजमेर में ४ स्कूलों की स्थापना "लंकास्ट्रियन प्रणाली" पर पूरी हुई। जहाँ पर १०० विद्यार्थियों के अध्ययन की सुविधा दी गई। ये चारों विद्यालय आगे चलकर एक विद्यालय में परिवर्तित कर दिये गये। इसी प्रकार मिशनरियों द्वारा आगरा, मेरठ, बनारस, बर्दवान, जौनपुर, आजमगढ़, मथुरा, लुधियाना आदि स्थानों पर भी स्कूलों की व्यस्था की गई।

मिशनरी विद्यालयों की विशेषताएं –

मिशनरियों ने सन् १८१३–१८३३ तक अनेक शिक्षा संस्थायें स्थापित की, जिनमें प्रारम्भिक विद्यालय की संख्या अधिक थी। इन विद्यालय की विशेषताएं निम्न थी–

१. प्रथमिक स्कूलों में शिक्षा का माध्यम भारतीय भाषाएँ थी।

२. इन स्कूलों में बाइबिल की शिक्षा अनिवार्य थी।

३. आधुनिक शिक्षण विधियों का प्रयोग किया जाता था।

४. कक्षा शिक्षण प्रणाली प्रारम्भ करने का श्रेय इन्ही को जाता है।

५. पाठ्यक्रम व्यापक था उसमें भारतीय और अंग्रेजी भाषाओं के साथ साथ इतिहास, भूगोल, गणित, व्याकरण, विज्ञान आदि विषय सम्मिलित थे। पुस्तकों के अभाव को दूर करने के लिए छापाखानों का प्रबन्ध था।

६. बालकों को पुस्तकें तथा लेखन सामग्री निःशुल्क दी जाती थी।

७. बालकों को योग्यता के आधार पर विभिन्न कक्षाओं में बाँटा जाता था।

८. विद्यालय का समय निश्चित होता था और शिक्षण कार्य समय–सारिणी के अनुसार चलता था।

९. विद्यालय में अनेक शिक्षक होते थे जो विभिन्न कक्षाओं में अलग–अलग पाठ्य विषय पढ़ाते थे।

१०. परिक्षायें होती थी। लिखित परीक्षा के आधार पर ही विद्यार्थी को कक्षोन्नति दी जाती थी।

११. अध्यापक अपने विषय के ज्ञाता और प्रशिक्षित होते थे।

१२. सभी छात्रों को अंग्रेजी पढ़ाना अनिवार्य था।

१३. रविवार को विद्यालय में अवकाश रहता था।

विद्यालयों में एक से अधिक शिक्षकों की व्यवस्था प्रगति का कारण बनी। इन मिशनरियों द्वारा ही भारत में नवीन शिक्षा प्रणाली का जन्म हुआ था।

१८३३ के आज्ञापत्र में मिशनरी प्रयासों के प्रति विचारों का सारांश –

१८३३ में कम्पनी के आज्ञापत्र का पुनः संशोधन २० वर्ष बाद हुआ इसमें भारतीयों के सुख समृद्धि बढ़ाने के लिए एक भी परोपकारी धारा नहीं जोड़ी गयी थी परन्तु एक लाख रूपये की धनराशि बढ़ाकर १० लाख कर दी गई। क्योंकि उस समय भारत के मानचित्र में एक विस्तृत भू–भाग लाल रंग से रंगा जा चुका था।

इस आज्ञापत्र के अनुसार शिक्षा अनुदान एक लाख रूपये वार्षिक से बढ़ाकर दस लाख रूपये कर दिया गया। तथा भारत में सभी देशों के मिशनरियों को अपने धार्मिक कार्य की पूरी स्वतन्त्रता दे दी गयी।

"कोई भी–भारतीय तथा सम्राट का कोई भी स्वाभाविक प्रजाजन अपने धर्म, जन्म स्थान, वंश तथा वर्ष के आधार पर किसी भी पद या स्थान को प्राप्त करने से रोका न जाय"। यह निश्चित कर दिया गया। बंगाल के सरकार का प्रभुत्व अन्य प्रान्तों के सरकारों पर होगा। बंगाल का गर्वनर जनरल अन्य प्रान्तीय

सरकारों से अपनी नीतियों को पालन करा सकेगा यह भी निश्चित हुआ था। गर्वनर जनरल की कौसिल में एक सदस्य बढ़ा दिया गया। इस प्रकार से भावी भारत की शिक्षा का भविष्य उज्जवल प्रतीत होने लगा।

आज्ञा पत्र का प्रभाव :

इस आज्ञा पत्र का भारत की शिक्षा पर व्यापक प्रभाव पड़ा। प्रायः सभी देश के ईसाई पादरी भारत आने लगे और शिक्षा क्षेत्र में अपना कार्य करने लगे शिक्षा अनुदान राशि बढ़ जाने से शैक्षिक विकास की सम्भावना बढ़ गई। सरकारी पदों पर नियुक्ति पर आधार योग्यता करने से भारतीयों में अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त करने की इच्छा बढ़ गई जिसके परिणाम स्वरूप देश में अंग्रेजी शिक्षा की माँग बढ़ गई।

सभी प्रान्तों को शिक्षा नीति केन्द्रीय सरकार (बंगाल प्रान्त) द्वारा नियन्त्रित होने लगी और सर्व प्रथम बार गर्वनर जरनल की कौसिल में कानून सदस्य का पद सृजित किया गया। जिस पर सर्व प्रथम लार्ड मैकाले को नियुक्त किया गया।

मिशनरियों के शैक्षिक (१८३३–१८५३) –

१८१३ के आज्ञापत्र के अनुसार मिशनरियों को अपने लक्ष्य प्राप्ति की स्वतन्त्रता मिल चुकी थी। इस काल में अनेक विदेशी मिशनरी भी भारत की ओर आकर्षित हुए और यहाँ पर आकर कार्य करना प्रारम्भ कर दिया इन लोगों में अमेरिका तथा जर्मन के मिशन प्रमुख थे। सन् १८३४ में वेसल मिशन सोसाइटी' ने मेललोर में कार्य करना

प्रारम्भ कर दिया और शीघ्र ही कनाडा मलयालम क्षेत्रों में अपने कार्य का विस्तार किया दूसरी प्रमुख संस्था प्रोटेस्टेन्ट मिशनरी सोसाइटी की थी जिसने भारत में पर्याप्त धर्म प्रचार का कार्य किया। सन् १८३३ से १८५३ के काल में मिशनरियों ने माध्यमिक विद्यालयों तथा कालेजों की स्थापना पर बल दिया जहाँ पर बालकों को अंग्रेजी भाषा के माध्यम से शिक्षा प्रदान की जाय।

इस काल के सुविख्यात मिशनरी एलेक्जेन्डर डफ ने कलकत्ता में १६३० ई० में अंग्रेजी स्कूल की स्थापना करके इस दिशा में नेतृत्व प्रदान किया। बम्बई में डा० जानविल्सन ने एक सुन्दर कालेज की स्थापना अपने नाम पर की। एन्डरसन तथा ब्रेडवुड ने १८३७ में जेनरल एसेम्बली के स्कूलों की स्थापना की। सन् १८४४ ई० में नागपुर में स्टीफेन हिसलोप ने अपने सोसाइटी के चौथे कालेज की स्थापना की। सन् १८५३ में चर्च मिसनरी सोसाइटी ने सेण्टजान कालेज, आगरा की स्थापना की और सन् १८४१ ई० में राबर्ट नोबुल ने नोबुल कालेज की स्थापना मासुली पट्टम में की। इसी प्रकार कलकत्ता मद्रास और बम्बई में स्काट–लैण्ड नेशनल चर्च के द्वारा अनेक कालेज की स्थापना की गई।

छठवाँ अध्याय

वर्तमान समय में उपादेयता

सविधिक शिक्षा

निःशुल्क शिक्षा

विस्तृत पाठ्यक्रम

स्त्री शिक्षा

निम्न वर्ग की शिक्षा

लिखित अध्ययन पद्धति का प्रारम्भ

कक्षा प्रणाली

पाठशाला भवन

पाठशाला सम्बन्ध तथा प्रशासन

बहुशिक्षक प्रणाली

शिक्षक प्रशिक्षण

पुस्तकों का अनुदान

सामाजिक उपादेयता

वर्तमान समय में उपादेयता

मिशनरियों का शैक्षिक योगदान भारतीय इतिहास में सदैव चिरस्मरणीय रहेगा। यद्यपि मिशनरियों ने विशुद्ध परोपकारिता की भावना से स्कूल संचालित नहीं किये थे, बल्कि इनका मुख्य उद्‌देश्य ईसाई धर्म का प्रचार करना था। फिर भी इन लोगों ने स्कूल की कार्य प्रणाली तथा संगठन में कुछ ऐसे महत्वपूर्ण सुधार किये जिसके कारण स्कूल के स्वरूप तथा संरचना के विषय में हमारी धारणायें स्पष्ट हो सकी। उपर प्रस्तुत शोध कार्य करने पर मिशनरी शिक्षा के योगदान का महत्व स्पष्ट हो जाता है। मिशनरी शैक्षिक प्रयासों की उपादेयता निम्न प्रकार से स्पष्ट की जा सकती है :

सविधिक शिक्षा –

सर्वप्रथम मिशनरियों ने हम लोगों को स्कूल की नवीन अवधारणा प्रदान की इसके पहले स्कूल क्या है और स्कूल किसे कहते है इस सम्बन्ध में हमारे विचार सुस्पष्ट नहीं थे मिशनरियों के आगमन से पूर्व देशी पाठशालाओं की स्थिति अत्यन्त शोचनीय थी, ये पाठशालाओं अधिकांशतः टूटे–फूटे मकानों, गोशालाओं, अस्तबलों या किसी ताल्लुकेदार के मकान एक हिस्से में लगा करती थी। इस प्रकार स्कूल क्या है तथा स्कूल में क्या कार्य होगा, जन साधारण के समझ में नहीं आती थी मिशनरियों ने सबसे पहले विद्यालय को सार्वाधिक शिक्षा का केन्द्र माना और भारत में साविधिक शिक्षा की नीव डाली इस प्रकार

मिशनरियों के द्वारा स्कूल के लिए किये गये साविधिक कार्यक्रम को देखकर वर्तमान समय में भारतीयों ने उनकी शिक्षा प्रणाली से सीखकर साविधिक शिक्षा के कार्यक्रम को अपनाया।

नि:शुल्क शिक्षा –

मिशनरियों के आगमन के पूर्व भारत में देशी शिक्षा प्रचलित थी। देशी शिक्षा का पाठ्यक्रम अत्यन्त संकुचित तथा अपर्याप्त होते थे देश की निर्धनता देशी शिक्षा की अवनति का प्रधान कारण थी देश की अधिकांश जनता निर्धन होने के कारण अपने बच्चों को नाम मात्र तक की फीस तक नहीं दे पाते थे देशी शिक्षा के पतन के बाद यूरोपीय जातियों में प्रविष्ट किया इसके साथ ही वहां की यूरोपीय मिशनरियाँ भी आई जिन्होंने धर्म प्रचार के लिए शिक्षा को अपना माध्यम चुना। और अनेक प्राथमिक विद्यालय खोले प्राथमिक शिक्षा के प्रारम्भिक प्रयास मिशनरियों द्वारा किये गये। इनका उद्देश्य अपनी बस्ती के बालकों की शिक्षा का प्रबन्ध करना था शिक्षा द्वारा ईसाई धर्म का प्रचार करना था।

प्राथमिक विद्यालयों में जो शिक्षा प्रदान की जाती थी वह पूर्णतया नि:शुल्क थी इस प्रकार से मिशनरियों ने भारत में सबसे पहने नि:शुल्क प्रारम्भिक शिक्षा की प्रथा चलाई जिसके लिए हम आज भी प्रयत्नशील है।

स्वतन्त्रता के उपरान्त भी देश के नेताओं और शिक्षा मनीषियों ने प्राथमिक शिक्षा के गहत्व को समझा सन् १९५० में जब देश का संविधान लागू

हुआ तो इस वर्ष के अन्दर ६ से १४ वर्ष के सभी बालकों के लिए अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा प्रदान करने की व्यवस्था की गई। सन् १९४६–४७ में देश में प्रारम्भिक विद्यालयों की संख्या लगभग डेढ़ लाख थी जिनमें ११२ करोड़ बालक पढ़ते थे और जिन पर १८.२७ करोड़ रूपये व्यय किये गये थे। उक्त अवधि में ६ से १४ वर्ष के लगभग २६ प्रतिशत बालकों को शिक्षा की सुविधायें प्राप्त थी और कुल जनसंख्या में साक्षरता का प्रतिशत १२.२४ था।

प्रथम पंचवर्षीय योजना लागू होने के बाद से केन्द्र और राज्य सरकारे प्रारम्भिक शिक्षा के प्रसार एवं विकास के प्रति निरन्तर प्रयत्नशील रही है। १९६६ तक ६ से ११ वय वर्ग के ७५.५ प्रतिशत बालकों के लिए प्रशिक्षण की व्यवस्था हो चुकी थी। केन्द्रीय सरकार द्वारा बालकों की एक राष्ट्रीय योजना बनाई है जिसमें १४ वर्ग तक के बालकों को अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा देने के अतिरिक्त पौष्टिक भोजन और बालकों के लिए कठिन शारीरिक श्रम का निषेध जैसे बालक कल्याण के पन्द्रह कार्यक्रमों की व्यवस्था की है। सन् १९७७–७८ में ६ से ११ वय वर्ग (कक्षा १ से ५) के विद्यालयों की संख्या ४,६२,५६७ तथा ११ से १४ वय वर्ग के विद्यालयों की संख्या १,१०,०३६ थी। इसी अवधि में इन विद्यालयों में नामांकन संख्या क्रमशः ४,६२,८६,६६० तथा २,५८,१८,७६६ थी इनमें पढ़ाने वाले शिक्षक शिक्षिकाओं की संख्या क्रमशः १:३७ और १:३२ था।

लगभग दस वर्षों बाद सातवीं पंचवर्षीय योजना के वर्ष के १६८६–८७ में प्रारम्भिक शिक्षा के विस्तार के आशा जनक वृद्धि हुई है। तथा शिक्षक और शिक्षिकाओं में भी क्रमशः ८७.२६ प्रतिशत और ८६.६४ प्रतिशत की वृद्धि हुई है।

मिशनरियों द्वारा प्रतिपादित निःशुल्क शिक्षा के महत्व को भारतीयों ने समझा और निःशुल्क शिक्षा के महत्व की व्यवस्था की। जिससे सभी वर्ग के लोग आज शिक्षा को ग्रहण कर रहे है और देश की प्रगति में सहायक हो रहें है।

विस्तृत पाठ्यक्रम –

हमारी देशी शिक्षा का पाठ्यक्रम अत्यन्त संकुचित तथा अपर्याप्त था। तथा इसमें पाश्चात्य ज्ञान विज्ञान एवं साहित्य को पाठ्यक्रम में स्थान देने का भी प्रयत्न नहीं किया जाता था न जिससे विद्यार्थियों को पढ़ने में कोई रूचि नहीं होती थी। परन्तु मिशनरियों द्वारा शिक्षा के लिए किये गये प्रयास अत्यन्त सराहनीय है। उन्होंने शिक्षा के पाठ्यक्रम को इस प्रकार बनाया जो कि विस्तृत, व्यावहारिक एवं उपयोगी था। पाठ्यक्रम ईसाई धर्म के साथ–साथ अंग्रेजी, स्थानीय भाषायें, व्याकरण, गणित, इतिहास तथा भूगोल आदि विषय सम्मिलित थे। उनके इस विस्तृत पाठ्यक्रम की उपादेयता यह है कि आज शिक्षा में विभिन्न विषयों को पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया गया है। छात्र अपनी रूचि के अनुसार कला, विज्ञान, वाणिज्य की शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं। इसके साथ–साथ तकनीकी शिक्षा भी ग्रहण कर सकते है और अपनी रूचि के अनसार इन विषयों

को चुनकर अपने भविष्य को सुरक्षित कर सकते हैं। इन विषयों को पढ़कर वे उसमें दक्षता प्राप्त करके कोई भी नौकरी या व्यवसाय प्राप्त कर सकते हैं।

स्त्री शिक्षा –

मिशनरियों के आगमन से पूर्व स्त्री शिक्षा की कोई समुचित व्यवस्था नहीं थी। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासनकाल में स्त्री शिक्षा की ओर ध्यान नहीं दिया गया। इसका प्रमुख कारण यह था कि कम्पनी को अपने राजकीय कार्यालयों के लिए शिक्षित स्त्रियों की आवश्यकता न थी। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासनकाल में स्त्री शिक्षा का आन्दोलन करने का श्रेय मिशनरियों को ही है। मिशनरियों ने स्त्री शिक्षा के लिए महत्वपूर्ण योगदान दिया है। सन् १८५१ ई० प्रोटेस्टेट मिशनरियों द्वारा बलिका विद्यालय खोले गए कुछ सरकारी तथा गैर सरकारी व्यक्यिों ने भी शिक्षा संस्थाओं की स्थापना करके बालिकाओं के लिए शिक्षा व्यवस्था की। १८६८ ई० में बंगाल की शिक्षा परिषद के प्रधान जे.इ.डी. बेथ्यून द्वारा स्थापित बेथ्यून बालिका विद्यालय विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इनके आगमन के पूर्व स्त्री शिक्षा को महत्वपूर्ण नहीं माना जाता था। शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार पुरूषों को ही प्राप्त था। समाज में अनेक प्रकार की सामाजिक कुरीतियां और अन्धविश्वास फैले हुए थे जैसे सती प्रथा इत्यादि। पति के मरने के पश्चात उसकी पत्नी को भी उसकी चिता के साथ जला दिया जाता था। सामाजिक सुरक्षा की दृष्टि से बाल विवाह प्रथा प्रचलित हो गई थी। मिशनरियों ने भारतीय समाज में फैली हुई कुरीतियों, अन्ध विश्वासों तथा स्त्रियों

की निम्न दशा को देखा उनके पुरूत्थान के लिए वे ऐसी समाज द्वारा सतायी स्त्रियों को अपने साथ ले जाकर मिशन स्कूलों में रखते थे तथा उनको उचित शिक्षा प्रदान करते थे जिससे उनमें ज्ञान का प्रसार हो फिर न किसी छोटे व्यवसाय या नौकरी में योग्यता अनुसार लगाते थे।

इस प्रकार मिशनरियों द्वारा स्त्री शिक्षा के लिए किये प्रयासों के महत्व को भारतीयों ने समझा और स्त्री शिक्षा को अनिवार्य माना और लड़कियों के लिए निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था की गई। आज मिशनरीज व अन्य भारतीय समाज सुधारकों के प्रयासों के फलस्वरूप ही स्त्री शिक्षा का विकास तीव्र गति से हो रहा है। शिक्षा विभाग भी इस ओर ध्यान दिया है। सन् १६०४ में श्रीमती एनी बेसेन्ट ने बनारस में सेण्ट्रल हिन्दू बालिका विद्यालय की स्थापना की। सन् १६१३ में दिल्ली में 'लेडी हार्डिंग मेडिकल कालेज' की स्थापना की गई। यह स्त्री शिक्षा के प्रथम महाविद्यालय थे। स्वतन्त्रता के पश्चात स्त्री शिक्षा की प्रगति तीव्र गति से हो रही है। लेडी हार्डिग मेडिकल कालेज भारत में चिकित्सा शास्त्र का सर्वप्रथम महिला कालेज है। सन् १६१७ में बालिकाओं के लिए १८,१२१ प्रथमिक स्कूल, ३८६ माध्यमिक स्कूल, १२ आर्ट्स तथा ४ व्यावसायिक कालेज थे। पंचवर्षीय योजना के बाद स्त्री शिक्षा संस्थाओं की संख्या एक करोड़ हो गई। इन आकड़ों से यह स्पष्ट हो जाता है कि आज समाज में नारी–स्त्री शिक्षा का प्रसार द्रुत गति से हो रहा है।

आज समाज में नारी को भी पुरूषों का दर्जा प्राप्त हो गया है। आज वह एक डाक्टर, वकील, समाज सेविका, प्रशासनिक अधिकारी है और पुरूषों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर चल रही है।

१९८६ राष्ट्रीय शिक्षा नीति में भी विभिन्न स्तरों पर महिलाओं के लिए व्यावसायिक, तकनीकी–शिक्षा पर सर्वाधिक जोर दिया गया है। इसी प्रकार मौजूदा नई प्रोद्योगिकी में महिलाओं की भागीदारी बढ़ाई जायेगी।

निम्न वर्ग की शिक्षा –

मिशनरियों के आगमन से पूर्व निम्न वर्गों के लिए कोई शिक्षा की व्यवस्था नहीं थी सवर्ण वाले निम्न वर्ग वालों से समाज सेवा कराता रहा है। इस जाति के लोग सामाजिक असामानता उत्पीड़न शोषण के शिकार थे। इन लोगों में निरक्षरता तथा गरीबी व्याप्त थी। यह वर्ग सामजिक आर्थिक राजनैतिक और सांस्कृतिक प्रगति के अवसरों से यह जातियाँ वंचित रही हैं। समाज इनके प्रति सदैव उपेक्षा का भाव रखता था। परन्तु मिशनरियों के शैक्षिक प्रयासों में सबसे महत्वपूर्ण कदम यह था कि उन्होंने केवल समाज के प्रतिष्ठित व रईस लोगों की शिक्षा की ओर ही केवल ध्यान दिया हो ऐसा नहीं था बल्कि उन्होंने निम्न वर्ग की शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया उसके पूर्व समाज के निम्न वर्ग को शिक्षा पाने का अधिकार न था पर मिशनरियों ने सबके लिए समान शिक्षा की व्यवस्था की उन्होंने निम्न वर्ग के लोगों में शिक्षा के प्रति त्यागरूपता की भावना जागृत की उसके लिए उन्होंने उनसे स्वयं सम्पर्क करके शिक्षा के महत्व को बताया और

उनके लिए निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था की उसके साथ ही साथ उन्होंने उन लोगों के लिए रहने के लिए आवास, खाने के लिए उचित भोजन पहनने के लिए वस्त्र तथा पढ़ने के लिए पुस्तक तथा अन्य सामग्रीयों की भी व्यवस्था की मिशनरियों के इन प्रयासों के फलस्वरूप आज देश में निम्न वर्ग के लिए निःशुल्क शिक्षा के साथ ही कपड़े तथा आवास आदि उपलब्ध कराये जा रहे है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति १९८६ में निम्न वर्ग के शिक्षा पर विशेष जोर दिया जा रहा है ताकि वे सामान्य जाति के लोगों के बराबर आ सके। निम्न वर्ग शिक्षा के लिए सुझाव दिये गये है–

१. निर्धन परिवार के लोगों को इस प्रकार प्रोत्साहन देना कि वे अपने बच्चों को १४ वर्ष की आयु तक नियमित स्कूल भेज सके।

२. जिला मुख्यालय पर इन छात्रों के लिए छात्रावास उपलब्ध कराना।

३. इन लोगों की शिक्षा की प्रक्रिया में समावेश बढ़ाने के लिए अनवरत नये तरीकों की खोज करते रहना।

४. इन वर्ग के बच्चों में नैतिक अपव्यय और अवरोधन की स्थिति की अनवरत जाँच पड़ताल करना तथा उनके लिए उपचारात्मक पाठ्यक्रम की व्यवस्था करना।

५. अनुसूचित जाति के शिक्षकों को नियुक्त करना।

६. स्कूलों की स्थापना तथा बाल वाड़ियों और प्रौढ़ शिक्षा केन्द्रों का स्थान चुनते समय इन लोगों की सुविधा का विशेष ध्यान देना।

७. इन वर्ग के लोगों की शिक्षा प्रक्रिया में समावेश बढ़ाने के लिए अनवरत नये तरीकों की खोज करना।

लिखित अध्ययन पद्धति का प्रारम्भ –

मिशनरियों के आगमन से पूर्व भारत में सम्पूर्ण शिक्षा मौखिक रूप से दी जाती थी छात्रों को समस्त ज्ञान कंठस्थ करना होता था कंठस्थ करने के कार्य को सरल बनाने के लिए शिक्षा शास्त्रीयों ने सभी विषयों की रचना पद्य में की थी। उच्चारण की शुद्धता पर विशेष ध्यान दिया जाता था उस समय लेखन पद्धति का प्रचलन नहीं था किन्तु मिशनरियों ने इस प्रकार की शिक्षा पद्धति की आलोचना की शिक्षा में पुस्तक व लेखन पद्धति को स्वीकारा इन लोगों को शिक्षा लेखन व पुस्तक अध्ययन पद्धति द्वारा होती थी। किन्तु यह मुद्रित पुस्तकें कहां से उपलब्ध हो इसके लिए मिशनरियों ने प्रिटिंग प्रेस की स्थापना की जिसमें पुस्तकें छपवाने का कार्य होता था। इसलिए मुद्रित पुस्तकें तथा लेखन सामग्री आदि की व्यवस्था सबसे पहले मिशनरियों ने ही की जिनका अनुसरण हम आज भी कर रहे हैं। आज अध्यापन पुस्तकों व लेखन पद्धति द्वारा है। मुद्रित पुस्तकें भी शिक्षा के लिये छपवायी जाने लगी और मिशनरियों द्वारा प्रतिपादित लेखन एवं पुस्तक अध्ययन पद्धति का आज भी अनुसरण कर रहे है। मौखिक शिक्षा का प्रचलन खत्म हो गया है लेखन अध्ययन पद्धति को अपनाया जा रहा है।

कक्षा प्रणाली –

मिशनरियों के आगमन से पूर्व कक्षा प्रणाली की कोई व्यवस्था नहीं थी जिससे बच्चों को अधिक कठिनाईयों का सामना करना पड़ता था। शिक्षण कार्य पेड़ की छाव में जमीन पर बैठकर हुआ करता था पर मिशनरियों ने कक्षा में बैठने की व्यवस्था की इसके लिए टेबुल, बेंच, चाक, डस्टर आदि का प्रयोग इन लोगों ने किया। और हम लोगों को सिखाया।

मिशनरियों द्वारा प्रतिपादित कक्षा प्रणाली की उपादेयता वर्तमान युग में यह है कि आज बालकों को शिक्षा कक्षा में बेंच पर बैठाकर प्रदान की जाती है। इसमें बच्चों में भी शिक्षा ग्रहण करने की उत्सुकता होती है।

पाठशाला भवन –

मिशनरियों ने भारतीयों के सामने स्कूल की स्पष्ट रूप रेखा रक्खी और विशेष रूप से पाठशाला भवन का नक्शा इन लोगों ने हम लोगों के समकक्ष पहली बार रखा। पाठशाला भवन कैसा होना चाहिए इसके लिए मिशनरियों ने पाठशाला में ही खेल के लिए मैदान पुस्तकालय, विज्ञान के लिए प्रयोग शाला आदि की व्यवस्था की। इस प्रकार के स्कूल भवन के निर्माण का प्रारूप को हमने मिशनरियों से ही सीखा और लिया है। आज स्कूल भवनों का निर्माण मिशनरियों द्वारा प्रतिपादित प्रारूप के अनुसार ही हो रहा है वर्तमान समय में जिन विद्यालयों की स्थापना होती है उस विद्यालय में कक्षाओं के अतिरिक्त खेल का मैदान पुस्तकालय, प्रयोगशाला आदि की भी व्यवस्था की जाती है।

पाठशाला प्रबन्ध तथा प्रशासन –

किसी भी देश की विकास की प्रक्रिया में शिक्षा व्यवस्था का महत्व पूर्ण योगदान होता है। वर्तमान समय में लोगों की रूझान पढ़ने लिखने की ओर अधिक है। स्कूल, कालेज, विश्वविद्यालयों में पढ़ने वाले छात्रों की संख्या निरन्तर बढ़ती जा रही है। सभी को समान रूप से बिना किसी भेद भाव के शिक्षा की सुविधा सुलभ हो इस बात को ध्यान में रखते हुए उत्तम शिक्षा प्रशासन की आवश्यकता अनुभव की जाती है। एक अच्छा और सुसंगठित शिक्षा प्रशासन ही उत्तम शिक्षा व्यवस्था देता है।

फाक्स, विश तथा रफनर ने शैक्षिक प्रशासन की परिभाषा इन शब्दों में की है– "शैक्षिक प्रशासन सेवा करने वाली ऐसी गति विधि है जिसके द्वारा शैक्षिक प्रक्रिया के लक्ष्यों को प्रभावकारी ढंग प्राप्त किया जाता है।"

पाठशाला प्रबन्ध एवं प्रशासन के विषय में भी मिशनरियों का योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा मिशनरियों ने ही हमें टाइम टेबुल की अवधारणा सबसे पहले प्रदान की। मिशनरियों द्वारा स्थापित प्रथमिक तथा माध्यमिक विद्यालय में शिक्षा की पहले दूसरे घण्टे में सरल विषय तथा तीसरे चौथे घण्टे में कठिन विषय फिर इण्टरवल के बाद के घण्टों में सरल विषय तथा आखिरी के घण्टों में कठिन विषय अदि पढ़ाये जाये। इस प्रकार समय विभाग चक्र बना लेने से शिक्षा प्रदान करने में आसानी होती है मिशनरियों द्वारा प्रतिपादित टाइम टेबुल की अवधारणा वर्तमान समय में भी मान्य है और आज विद्यालयों में शिक्षा समय

विभाग चक्र को बनाकर ही प्रदान की जाती है जिससे बच्चे की कार्य कुशलता में कमी न आने पावें और छात्र उत्साह पूर्वक पढ़े।

बहु–शिक्षक प्रणाली –

मिशन स्कूलों में एकल शिक्षक प्रणाली के स्थान पर बहु शिक्षक प्रणाली का प्रयोग किया गया इसके आगमन के पूर्व एक ही शिक्षक सारा दिन शिक्षा प्रदान करते थे पर मिशनरियों ने इस तथ्य का खण्डन किया और बहुशिक्षक प्रणाली को अपनाया ताकि छात्र बोर न हो। एक ही शिक्षक के पढ़ाने पर कक्षा में नीरसता आ जाती है पर बहुशिक्षक प्रणाली को अपनाया ताकि छात्र बोर न हो। एक ही शिक्षक के पढ़ाने पर कक्षा में नीरसता आ जाती है पर बहुशिक्षक प्रणाली को अपनाया ताकि छात्र बोर न हो। एक ही शिक्षक के पढ़ाने पर कक्षा में नीरसता आ जाती है पर बहु शिक्षक प्रणाली के द्वारा उसके उत्साह व कार्य कुशलता में कमी नहीं आने पाती मिशनरियों द्वारा अपनायें गये बहु शिक्षक प्रणाली को आज जोर शोर से अपनाया जा रहा है। एक शिक्षक के स्थान पर अनेक शिक्षक शिक्षण प्रदान कर रहे है और छात्र भी उत्साह पूर्वक पढ़ते है।

शिक्षक प्रशिक्षण –

आधुनिक अर्थों में शिक्षक शिक्षा का आरम्भ ब्रिटिश काल में ही हुआ था। मिशनरियों ने सबसे पहले शिक्षकों के प्रशिक्षण पर जोर दिया और इसके निमित्त अनेक प्रशिक्षण विद्यालयों की स्थापना की। सर्वप्रथम सन् १८१६ में कलकत्ता स्कूल सोसायटी ने प्राथमिक शिक्षकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था की। इसके बाद १८२४ ई० में बम्बई में देशी विद्यालय समाज ने तथा १८२६ ई० में मद्रास शिक्षा समाज की ओर से प्राथमिक शिक्षकों के लिए प्रशिक्षण स्कूल स्थापित किये गये। इन विद्यालयों में शिक्षकों को प्रशिक्षित किया जाता था। और प्रशिक्षित शिक्षक ही शिक्षा प्रदान करते हैं क्योंकि अप्रशिक्षित शिक्षक प्रदान करेंगें मिशनरियों के इन प्रयासों के फलस्वरूप आज अनेक प्रशिक्षण महाविद्यालय खुले है जहाँ छात्र–छात्राओं को शिक्षक प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है और प्रशिक्षित शिक्षकों को ही शिक्षण प्रदान करने के लिए नियुक्त किया जाता है।

सन् १९८६ में भारत सरकार द्वारा स्कूल शिक्षकों का एक मास ओरिएन्टेशन कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया इसके लिए सम्पूर्ण देश में दस–दस दिन के कैम्प लगाये गये इन कैंम्पों का उद्देश्य शिक्षकों का अपनी व्यवहारिक दक्षता में वृद्धि करना था सन् १९८६ में लगभग ४.४२ लाख और १९८७ में ४.३८ लाख स्कूल शिक्षकों ने इस कार्यक्रम का लाभ उठाया १९८८ में लगभग ५ लाख शिक्षकों ने इसका लाभ उठाया ये कार्यक्रम १९९० में भी चलता रहा। प्रारम्भिक स्तर और

माध्यमिक स्तर पर सेवा कालीन प्रशिक्षण कार्यक्रम का चालू रखा गया। सन् १९८७–८८ में दो कार्यक्रम प्रारम्भ किये गये।

1- जिला शैक्षिक एवं प्रशिक्षण संस्थान।

2- माध्यमिक शिक्षकों के शिक्षा संस्थानों का सुदृढ़ीकरण इस प्रकार भारत में शिक्षक शिक्षा के क्षेत्र में पर्याप्त विकास हुआ शिक्षा संस्थानों, शिक्षकों और छात्राध्यापकों की संख्या मे पर्याप्त वृद्धि हुई अब सरकार का ध्यान इनके गुणात्मक विकास की ओर गया है।

शिक्षक प्रशिक्षण की राष्ट्रीय परिषद को समुचित संसाधन उपलब्ध कराये जा रहे है ताकि यह परिषद अध्यापक शिक्षा की संस्थाओं को मान्यता देने के लिए अधिकारिक हो और उनके शिक्षा का और पद्धतियों के बारे में मार्ग दर्शन कर सके।

पुस्तक का अनुदान –

मिशनरी पहले यूरोपीय थे जिन्होंने भारतीय भाषाओं का शिक्षा प्रदान करने हेतु सीखा हालाकि उनका मुख्य उद्देश्य धर्म परिवर्तन था। पर इसके लिए उन्होंने शिक्षा का माध्यम मातृ भाषा को ही चुना उन्होंने भारतीय भाषाओं में किया और बाइबिल की शिक्षा प्रदान की जिससे उनके धर्म परिवर्तन के लक्ष्य की प्राप्ति हो सके। उन्होंने बाइबिल का अनुदान विभिन्न भाषाओं में कराया और अन्य पुस्तकों का अनुदान करवाया और प्राथमिक विद्यालयों में शिक्षा का माध्यम

मातृ भाषा को रखा। आज वर्तमान युग नें भी मातृ भाषा के ही माध्यम से शिक्षा प्रदान की जाती है।

सामाजिक उपादेयता --

मिशनरियों ने भारत में एक नवीन शिक्षा का सूत्र पात किया उनका मुख्य उद्देश्य धर्म परिवर्तन था और भारत वासियों को अपने धर्म का अनुयायी बनाना था। जिसके फलस्वरूप आज भारत में गोआ, केरल, नागालैण्ड के लोगों ने ईसाई धर्म को स्वीकार कर लिया है। और ये बाइबिल की शिक्षा ग्रहण कर रहे है इसके अतिरिक्त मिशनरियों ने शारीरिक श्रम के प्रति आदर की भावना जगाई लोगों ने भी उत्साह पूर्वक ऐसे कार्यक्रमों में हिस्सा लिया स्त्रियों ने भी इसमें योगदान दिया आज भी स्त्रियाँ भी शारीरिक श्रम कर रही है। मिशनरियों ने समाज के निर्धन वर्ग के बच्चों के लिए मुक्त शिक्षा व्यवस्था तथा रहने की। बच्चों को प्रोत्साहित करने के लिए उन्होंने आदि सुविधाएं भी प्रदान किए उनके इस प्रोत्साहन से बच्चों में शिक्षा के प्रति रूझान बढ़ा। इस प्रकार मिशनरियों ने भारतीय शिक्षा में अपूर्व योगदान दिया आज भी उनके प्रयासों को अपनाया जा रहा है निःशुल्क शिक्षा, उपहार आदि की व्यवस्था है। यही कारण है किं मिशनरियों को आधुनिक शिक्षा का प्रवर्तक माना जाता है।

इस सन्दर्भ में * 'नूरूल्ला व नायक के अंग्रकित शब्द उल्लेखनीय है "मिशनरियों को भारत में आधुनिक शिक्षा पद्धति के प्रवर्तक होने का सम्मान प्राप्त है।"

---

* नरूल्ला व नायक, "ए हिस्ट्री ऑफ एजूकेशन इन इण्डिया", १९७४, मैकमिलन द मैकमिलन कम्पनी ऑफ इण्डिया लिमिटेड, दिल्ली

उपसंहार

इस शोध ग्रन्थ में भारत वर्ष "१६०० से १८५३" के मिशनरी शिक्षा के प्रचार प्रसार–उपयोगिताओं पर प्रकाश डाला गया है। भारत में मध्यकालीन शासन के अधोपतन होते ही पश्चिमी देश के बहुत से व्यापारी यहाँ वैभव तथा सम्पदा से आकर्षित होकर पश्चिमी कोष्ठ के बन्दरगाहों में बसना आरम्भ किया। इन यूरोपीय व्यापरियों के आने के पूर्व भारत में देशी शिक्षा प्रचलित थी। परन्तु देशी शिक्षा में निम्न दोष आ गये थे और सबसे बड़ा दोष देश की निर्धनता थी। धीरे–धीरे देशी शिक्षा की अवनति हो गई। इन यूरोपीय व्यापारियों के साथ–साथ यहां के अंग्रेज, डेन, डच, पुर्तगाली व फ्रांसीसी मिशनरियों का मुख्य उद्देश्य यहां के निवासियों को ईसाई धर्म में दीक्षित करना था। उनके उस उद्देश्य की चाहे जितनी भी बुराई की जाय पर इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए शिक्षा को साधन बनाकर, उन्होंने इस क्षेत्र में जो कार्य किए, वे भारतीय शिक्षा के इतिहास में सदैव स्वर्ण अक्षरों में अंकित रहेंगे। उन्होंने इस देश में न केवल आधुनिक शिक्षा पद्धति को प्रचलित किया वरन स्वयं शिक्षा संस्थाओं का संचालन करके भारतीयों के समक्ष एक अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत किया।

मिशनरियों ने यह कार्य उस समय किया जब प्राचीन भारतीय शिक्षा यवनों द्वारा पदाक्रान्त की जा चुकी थी और मुस्लिम शिक्षा अपने संरक्षकों के अभाव में डगमगा रही थी। ऐसे समय में मिशनरियों ने एक नवीन प्रणाली का सूत्रपात करके इस देश की जनता का अकथनीय हित किया।

यह मुख्यतः मिशनरियों के प्रयत्नों का ही परिणाम था कि १६ वीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों ने इस देश में शिक्षा की एक नवीन पद्धति का अर्विभाव देखा।

मिशनरियों ने अनेक प्राथमिक विद्यालयों (स्कूलों) की स्थापना की और भारतीयों को अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित किया। उन्होंने भारतीय जनता को निःशुल्क शिक्षा प्रदान करके उनके स्तर को ऊँचा उठाया। ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना १६०० ई० में हुई। अंग्रेज मिशनरी भी धर्म प्रचार करने तथा व्यापार की दृष्टि से भारत आये। धर्म प्रचार के लिए लोगों ने भी बहुत से प्राथमिक विद्यालयों की स्थापना तथा खैराती स्कूलों, मिशन स्कूलों आदि की व्यवस्था की। सन् १७६१ ई० में हिन्दुओं के लिए बनारस संस्कृत कालेज की स्थापना जो जोनाथन डंकन ने किया धीरे–धीरे कम्पनी ने धार्मिक तटस्थता की नीति को अपना लिया। इससे मिशनरियों में बड़ी खलबली मची। इसके विरोध में मिशनरियों ने एक आन्दोलन प्रारम्भ किया। इसमें चार्ल्स ग्रान्ट का नाम प्रमुख था। जिन्होंने सुझाव दिया कि अंग्रेजी भाषा को ही शिक्षा के माध्यम के रूप में अपनाया जाय। इन सभी प्रयत्नों के फलस्वरूप १८१३ ई० में कम्पनी ने एक आज्ञा पत्र जारी किया जिसके अनुसार मिशनरियों की भारत में धर्म प्रचार तथा अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार की अनुमति दी गयी। मिशनरी भारत में अधिक से अधिक की संख्या में आने लगे और अनेक अंग्रेजी स्कूल को खोलकर वर्तमान शिक्षा प्रणाली की नींव डाली और १८१३ से १८३३ के बाद में मिशनरियों ने धर्म प्रचार तथा धर्म परिवर्तन सम्बन्धी प्रयासों के लिए शिक्षा का माध्यम

बनाया। इस काल में मिशनरियों ने बंगाल मद्रास व मुम्बई में अनेक विद्यालय खोले और शिक्षा का माध्यम मात्रभाषा रखा। सन् १८३३ के आज्ञा पत्र में मिशनरियों को भारत में सभी देशों के मिशनरियों को अपने धार्मिक कार्य करने की पूर्ण स्वतन्त्रता दे दी गई और १८३३–५२ में उन लागों ने अनेक विद्यालयों की स्थापना करके भारत में आधुनिक शिक्षा की नींव डाली।

१८५४ ई० की वुड की विज्ञप्ति ने तथा १८८२ के शिक्षा आयोग ने शिक्षा को पुर्नजीवित करने के लिए मार्ग प्रशस्त कर दिया एवं इस प्रदेश की शैक्षिक प्रक्रिया पर अपनी विशेष छाप डाली प्रत्येक प्रदेश में शिक्षा संचालन हेतु पृथक शिक्षा विभाग की स्थापना निःसंदेह एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है, वर्तमान की पूर्णतः विकसित और व्यापक शिक्षा पद्धति के निर्माण का श्रेय भी इसी को प्राप्त है। जी०क्लार्क एवं जे०थामसन द्वारा चलायी गयी विवेकपूर्ण शैक्षिक नीति, जिसमें प्रारम्भ से बालकों की शिक्षा पर ध्यान देना, मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा देना एवं शिक्षा को अनुभव करते हुए उसकों अधिक व्यावहारिक बनाना था जिससे वह उनके लिए अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकें, मिशनरियों द्वारा प्राथमिक शिक्षा के विकास में नूतन अध्याय प्रारम्भ हुआ। अंग्रेजी शिक्षा की सबसे बड़ी देन यह रही है कि इसके द्वारा भारतीयों का पाश्चात्य ज्ञान–विज्ञान से सम्पर्क स्थापित हुआ यह ज्ञान हमें उस समय मिला जब भारतीय संस्कृति पतन की ओर जा रही थी, इस ज्ञान से उन्हें प्रगति पथ पर अग्रसर होने की प्रेरणा प्राप्त हुई।

अंग्रेजी शिक्षा के द्वारा भारतीय समाज का पुनरूत्थान हुआ, भारतीय समाज ने व्यापक ऊँच–नीच, जाति–पाति प्रथा, सती–प्रथा और शिशु–हत्या जैसी सामाजिक कुरीतियों का प्रचलन था, अंग्रेजी शिक्षा पाकर ही भारतीयों ने इस सामाजिक कुरीतियों के निराकरण के लिये आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया। अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली से भारतीयों को पाश्चात्य विज्ञान के अध्ययन का भी अवसर प्राप्त हुआ, इन वैज्ञानिकों में श्री रामानुजम, जगदीश चन्द्र बसु तथा सी० वी० रमन के नाम विशेष उल्लेखनीय है। इसके अतिरिक्त प्रेस, सिनेमा, रेडियो, पुस्तकालय और अजायबघर जैसे लोक शिक्षा के साधन भी हमें अंग्रेजी शिक्षा से प्राप्त हुयें।

अंग्रेजों ने भारतीय कला, चित्रकला, वास्तुकला, मूर्तिकला की खोज की और उनके संरक्षण की व्यवस्था की, इसका वैज्ञानिक अध्ययन भी अंग्रेजों द्वारा किया गया। जिसके फलस्वरूप भारत के विश्वविद्यालयों मे इनके अध्ययन की व्यवस्था की। अंग्रेजी शिक्षा द्वारा ही भारत में साहित्यिक तथा सांस्कृतिक जागृति भी उत्पन्न हुई। अंग्रेजी विद्वानों ने संस्कृत भाषा सीखकर प्राचीन भारतीय ग्रन्थों का अंग्रेजी भाषा में अनुवाद किया इस प्रकार हमारे प्राचीन साहित्य को अंग्रेजी भाषा के माध्यम से पुनर्जीवित किया इसके फलस्वरूप देश में बौद्धिक जागृति प्रारम्भ हुई और हम अपने प्राचीन गौरव को पुनः प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील हुये। अंग्रेजों के सम्पर्क में आकर भारतीयों में मानवतावादी प्रवृत्तियों का विकास हुआ, समाज के दलित वर्ग, को ऊपर उठाने की प्रेरणा मे अंग्रेजों से ही मिली। अस्पृश्यता–उन्मूलन, महिला उद्धार जैसे कार्य अंग्रेजों की प्रेरणा स्वरूप ही किये

गये भारत में राजनैतिक संस्थाओं के उदय और विकास का श्रेय भी अंग्रेजी शिक्षा को ही है सन् १८८२ मे हण्टर आयाग ने नगर पालिकाओं और जिला परिषदों की स्थापना कर प्राथमिक शिक्षा का उत्तरदायित्व इन्हीं संस्थाओं को सौंप दिया। इसके बाद १९१६ और १९२५ में भारत सरकार अधिनियमों के अन्तर्गत जन शिक्षा का उत्तरदायित्व लोकप्रिय भारतीय मन्त्रियों को सौंप दिया गया। इस प्रकार भारत में जनतान्त्रिक संस्थाओं का विकास होता गया अंग्रेजों ने अंग्रजी शिक्षा व्यवस्था को भारत के लिये अनुपम देन कहा है वही भारतीयों ने इस शिक्षा व्यवस्था को अहितकर और अराष्ट्रीय कहा है क्योंकि अंग्रेजी शिक्षा में निम्न दोष विद्यमान थे–

अंग्रेजी शिक्षा का सबसे बड़ा दोष यह है कि वह भारतीय वातावरण के प्रतिकूल थी उसकी संरचना इंग्लैण्ड की शिक्षा प्रणाली को आदर्श मानकर की गई थी जो कि भारत के परिस्थितियों के अनुकूल न थी। भारत की अपनी एक महान संस्कृति थी जिसे अंगेजों ने हेय दृष्टि से देखा और पाश्चात्य सभ्यता तथा संस्कृति को श्रेष्ठ बताकर उसे भारतवासियों पर थोप दिया। उन्होंने भारतीय धर्म और संस्कृति को नष्ट कर उसके स्थान पर ईसाई मत को प्रतिष्ठित करने का भरपूर प्रयास किया।

अंग्रेजी शिक्षा के उद्देश्य कभी भी सन्तोषजनक नहीं रहे वे ब्रिटिश सरकार की आवश्यकताओं के अनुसार बदलते रहें। सन् १८१३ के आज्ञापत्र में साहित्य के पुनरूत्थान, उन्नति एवं भारतीय विज्ञानों के प्रोत्साहन देना चाहता

था। १८५४ का घोषणा पत्र पश्चिमी कला, विज्ञान–दर्शन और साहित्य का प्रसार चाहता था, १९१३ के सरकारी प्रस्ताव में चरित्र निर्माण शिक्षा का उद्देश्य घोषित किया गया, अतः अंग्रेजी शिक्षा व्यवस्था में शिक्षा के उद्देश्य बराबर बदलते रहे।

ब्रिटिश भारत में शिक्षा की कोई सुनिश्चित योजना नहीं बनाई गई। अधिकांश अंग्रेज अपने कार्यकाल के लिये योजना बनाते थे, इस प्रकार प्रत्येक गवर्नर जनरल, गवर्नरों तथा शिक्षा संचालकों के साथ शिक्षा नीति में परिवर्तन होता रहता था सन् १९४४ की सार्जेण्ट योजना अंग्रेजी सरकार की प्रथम और अन्तिम राष्ट्रीय योजना थी, परन्तु इसका क्रियान्वयन न हो सका।

अंग्रेजी शिक्षा भारत की सामाजिक कुरीतियों और रूढ़िवादिता को दूर करने में असफल रही, जो शिक्षा व्यवस्था विकसित हुयी उससे राष्ट्रीय एकता समाप्त हो गयी और देशी परावलम्बी हो गयी। देशी शिक्षा देश की प्राचीन परम्पराओं पर आधारित थी यह शिक्षा सस्ती, सुलभ और जनसाधरण की आकांक्षाओं के अनुरूप थी, परन्तु ब्रिटिश सरकार ने उसकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया।

अंग्रेज शिक्षा अधिकारियों ने शिक्षा की अनेक गलत नीतियों का अनुसरण, भारतीय भाषाओं की उपेक्षा आदि ऐसी नीतियाँ थीं, जो राष्ट्रीय शिक्षा के विकास में बाधक रही। ब्रिटिश शासन काल में शिक्षा विभाग की बड़ी उपेक्षा की गई अन्य विभागों की तुलना में शिक्षा विभाग की ओर कम ध्यान दिया गया। शिक्षा विभाग के अधिकारियों की अवहेलना की जाती थी उनके द्वारा प्रस्तुत योजनाओं

पर ध्यान नहीं दिया जाता था, सन् १८१३ के आज्ञापत्र के अनुसार भारत में जन–साधारण की शिक्षा का प्रबन्ध करना कम्पनी का कर्तब्य हो गया और इस कर्तब्य को पूरा करने के लिए प्रति वर्ष एक लाख रूपयें की धनराशि भी सुरक्षित कर दी गई, परन्तु आज्ञापत्र में यह स्पष्ट नहीं किया गया कि यह धन किस प्रकार व्यय किया जायेगा। अतः शिक्षा के क्षेत्र कई प्रश्नों पर विवाद प्रारम्भ हो गया जिसे 'प्राच्य पाश्चात्य' विवाद के नाम से जाना जाता है। विवाद के विषय थे, भारत में अंग्रेजी शिक्षा के उद्देश्य, लक्ष्य, माध्यम तथा साधन क्या होना चाहिए इन विवादास्पद प्रश्नों को लेकर शिक्षा के क्षेत्र में तीन वर्ग बन गयें। प्राच्यवादी–शिक्षावादी, पाश्चात्य–शिक्षावादी, लोक–भाषावादी के नाम से जाने है।

राजाराम मोहन राय पाश्चात्य शिक्षा के पक्षपाती थे। उन्होंने पाश्चात्य शिक्षा और विज्ञान का अधिकाधिक समर्थन किया और इस बात पर बल दिया कि प्रगति के पथ पर आगे बढ़ने के लिए भारत को मध्यकालीन और विद्वतावादी पद्धति का परित्याग करके अपनी शिक्षा पद्धति आधुनिक विज्ञान के अनुकूल बनानी चाहिए। अपनी उपयुक्त मान्यताओं और शिक्षाओं द्वारा राजा राममोहन राय ने पूर्व और आधुनिक पश्चिम की दीवार को गिरानें और सवर्ण हिन्दुओं के बीच यूरोपीय विचारों और मानदण्डों को लाने का प्रयास किया। इस कार्य में उन्हें काफी सफलता भी प्राप्त की। १८१६–१७ में उन्होंने कलकत्ता में एक अंग्रेजी स्कूल की स्थापना की और उनकी प्रेरणा से ही १८२२–२३ में हिन्दू कालेज की स्थापना हुई। वे ईसाई मिशनरी को भी भारतीय शिक्षा क्षेत्र में लाए।

रेवरण्ड डफ के स्कूल को चलाने के सम्बन्ध में उन्होंने घर–घर जाकर लोगों को समझाया कि ईसाई द्वारा चलाये जाने वाले विद्यालय में पढ़ने से कोई ईसाई नहीं बन जाता। इसी प्रकार उन्होंने इस आपत्ति का निराकरण किया कि ईसाई विद्यालय में बाइबिल पढ़ाए जाने से जाति भ्रष्ट होने का डर है। उन्होंने लोगों को समझाया कि किसी भी धर्म ग्रन्थ पढ़ने से जाति–भ्रष्ट होने का प्रश्न नहीं उठता है। सभी धर्मों के विषय में जानना अच्छा है। मैंने खुद बहुत बार बाइबिल पढ़ी है, कुरान शरीफ भी पढ़ी है, परन्तु मैं न तो ईसाई बना हूँ, न मुसलमान। बहुतेरे यूरोपीय गीता एवं रामायण आदि ग्रन्थों का अध्ययन करते हैं, लेकिन वे लोग हिन्दू नहीं हो गए। मेरे विचार से– "राजा राममोहन राय ही वह प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने भारत की स्वतन्त्रता का सन्देश प्रसारित किया।"

उपर्युक्त विवेचन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि हमारी प्राथमिक शिक्षा में ग्रेट ब्रिटेन की तरह सांस्कृतिक गुणों का और चारित्रिक गुणों का विकास अमेरिका की तरह लोकतान्त्रिक गुणों का विकास और रूस की तरह श्रम के प्रति आदर उत्पन्न करने का उद्देश्य निहित है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये हमें प्राथमिक शिक्षा के लिए अभी बहुत प्रयास करना है। इस स्तर पर हमें अपव्यय और अवरोधन को रोकना है।

माध्यमिक शिक्षा को ग्रेट ब्रिटेन, यू० एस० ए० तथा रूस में आत्मनिर्भर बनाने में यह देश बहुत हद तक सफल हुए है। रूस में विद्यार्थियों के लिए किसी न किसी प्रकार की व्यवसायिक शिक्षा अनिवार्य कर दी गई है। ब्रिट्रेन में

तकनीकी और व्यवसायिक पाठ्यक्रमों का समावेश किया गया है। यू०एस०ए० में भी माध्यमिक शिक्षा को ऐसा बना दिया गया है, कि इसे प्राप्त कर लेने पर केवल केवल समय भरने के लिए ही व्यक्ति विश्वविद्यालय में जाने के लिए बाध्य होता। इन देशों का अनुकरण करके भारत में भी ऐसी शिक्षा व्यवस्था की जानी चाहिए ताकि माध्यमिक शिक्षा अपने में पूर्ण हो जाय और इसे पाकर व्यक्ति आत्मनिर्भरता का अनुभव कर सके। भारत में विश्वविद्यालयीय शिक्षा में भी अन्य देशों की तुलना में भारत में अनेक शिक्षा सम्बन्धी समास्याएं विद्यमान है जैसे– प्रवेश पाठ्यक्रम, परीक्षा तथा अनुशासन इत्यादि। विश्वविद्यालयीय शिक्षा को समृद्ध बनाने के लिये हमें ग्रेट ब्रिटेन, यू०एस०ए० तथा रूस जैसे विकसित देशों के विश्वावेद्यालयों के अच्छे तत्वों को ग्रहण करना पड़ेगा। भारत के विश्वविद्यालयों में प्रवेश परीक्षा, पाठ्यक्रम, प्रशासन, तथा विद्यार्थियों की कठिनाईयों आदि से सम्बिन्धत समस्याओं का समाधान खोजना होगा। इस दिशा में प्रयत्न के क्रम में हमें ग्रेट ब्रिटेन, यू० एस० ए० तथा रूस के उदाहरण से अवश्य ही बड़ी प्रेरणा और सहायता मिलेगी।

उपरोक्त बातों से यह निष्कर्ष निकलता है कि शिक्षा पर ही शासन की पूर्णता एवं जनता की भलाई अवलम्बित है। आधुनिक शिक्षा द्वारा ही भारत की विभिन्न जातियाँ एवं धर्म संगठित होकर एकता के सूत्र में बधें। भारत में पुर्नजागरण का एक मात्र कारण शिक्षा का विकास ही है। इसी कारण स्वतन्त्रता

प्राप्त करने हेतु राष्ट्रीय भावना लोगों में जागृत हुई यह तथ्य आधुनिक भारतीय शिक्षा में विकास का ऐतिहासिक महत्व प्रदान करता है।

उपरोक्त तथ्यों के फलस्वरूप हम यही कह सकते हैं कि ब्रिटिश शासन ने जो शिक्षा की नींव डाली, वो शिक्षा भारतीय शिक्षा के अनुरूप न थी। जिसके फलस्वरूप राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली का निर्माण तथा विकास करने में पूर्णतः असफल रही।

अग्रिम शोध हेतु सुझाव –

१. आधुनिक शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में मिशनरी शिक्षा के योगदान का अध्ययन।

२. स्त्री शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में मिशनरी शिक्षा के योगदान की का अध्ययन करना।

३. अन्य देशों जहाँ पर मिशनरियों ने शिक्षा का प्रसार किया है तथा भारतवर्ष में मिशनरियों के शैक्षिक प्रयास का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है।

४. मिशनरी शिक्षा प्रणाली तथा आधुनिक शिक्षा प्रणाली का तुलनात्मक अध्ययन।

संदर्भ-ग्रन्थ सूची

१– अल्तेकर, ए०एस० : एजुकेशन इन ऐसेंण्ट इण्डिया, वाराणसी, नन्द किशोर एण्ड ब्रदर्स, १९७६

२– अदावल, एस०वी० व उनियाल, एम० : भारतीय शिक्षा समस्याएं तथा प्रवृत्तियॉ लखनऊ उत्तर प्रदेश ग्रन्थ अकादमी, १९७३

३– अग्निहोत्री, रविन्द्र : आधुनिक भारतीय शिक्षा समस्यायें और समाधान राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपुर, १९८७

४– अग्रवाल, जे०सी० : लैण्ड मार्क्स इन द हिस्ट्री ऑफ मार्डन इण्डियन एजुकेशन, नई दिल्लीः वाणी बुक्स, १९८६

५– अवस्थी, अमरेश्वर एवं अवस्थी, रामकुमार : आधुनिक भारतीय सामाजिक एवम् राजनीतिक चिन्तन, रिसर्च पब्लिकेशन ट्रीपोलिया, जयपुर–२

६– की०,एफ०इ० : इण्डियन एजुकेशन इन एन्सिएन्ट एण्ड लेटर टाइम्स लंदन, आक्सफोर्ड, १९३८

७– कपिल, एस०के० : रिसर्च टेक्निक्स, भार्गव पब्लिकेशन आगरा, १९८६

८– ग्रान्ट, चार्ल्स : ऑब्जरवेशन ऑफ द स्टेट ऑफ सोसाइटी एमंग द एसिएटिक सब्जेक्ट्स आफ, ग्रेट ब्रिटेन

९– गुप्ता, एस०पी० : भारतीय शिक्षा का विकास तथा समस्याएं, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, १९९१

१०– चौबे, सरयू प्रसाद : भारतीय शिक्षा का विकास, सरस्वती सदन मसूरी, १९६६

११– चौबे, सरयू प्रसाद : पाश्चात्य शैक्षिक विचार धारा, सेन्ट्रल बुक डिपो, इलाहाबाद, १९७३

१२– चौबे, सरयू प्रसाद : कम्परेटिव एजुकेशन, विनोद पुस्तक, पुस्तक मन्दिर आगरा, १९८८

१३— चतुर्वेदी, सीताराम : शिक्षा प्रणालियॉं और उनके प्रवर्तक (शिक्षा के नये प्रयोग और विधान मान स्वरूप) नन्द किशोर ब्रदर्स, बनारस

१४— जौहरी एवम् पाठक पी०डी० : भारतीय शिक्षा का इतिहास, दयालबाग, आगरा

१५— जायसवाल, सीताराम : तुलनात्मक शिक्षा, रामनारायण लाल बेनी माधो, इलाहाबाद, १९६२

१६— थॉमस, एफ०डब्लू० : द हिस्ट्री एण्ड प्रास्पेक्टस ऑफ ब्रिटीश एजुकेशन इन इण्डिया, कैम्ब्रिजवेल, १८९१

१७— दयाल, भगवान : द डेवलपमेंट ऑफ मार्डन इण्डियन एजुकेशन बाम्बे, ओरिएण्ट लाग मन्स, १९५५

१८— नुरुल्ला व नायक : ए हिस्ट्री ऑफ एजुकेशन इन इण्डिया, मैकमिलन एण्ड कम्पनी लिमिटेड बाम्बे, १९६२

१९— पाठक, पी०डी० : प्राब्लम्स ऑफ इण्डियन एजुकेशन, विनोद पुस्तक मंदिर राघव मार्ग आगरा, १९६६

२०— पाठक एवं त्यागी : शिक्षा के दार्शनिक सिद्धान्त, विनोद पुस्तक मंदिर राघव मार्ग आगरा—२

२१— पाण्डेय, रामशकल : आधुनिक शिक्षा का विकास, मैट्रोपोलिटन बुक कम्पनी (प्रा०) लि० दिल्ली, १९६३

२२— प्रभु, पी०एन० : हिन्दू समाज की व्यवस्था, जवाहर पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली

२३— पारूलेकर, आर०बी० : लिट्रेसी इन इण्डिया इन ब्रिटिश डेज़, अ शिक्षा पब्लिकेशन, १९४०

२४— बसु, ए०एन० : एजुकेशन इन इण्डिया, कलकत्ता ओरिएण्ट बुक कम्पनी, १९४७

२५– बेस्ट, जे०डब्ल्यू० : रिसर्च इन एजुकेशन, नई दिल्ली प्रेन्टिस हाल, १६७८

२६– बुच, एम०बी० : अ सर्वे ऑफ रिसर्च इन एजुकेशन I,II,III,IV

२७– भाई, योगेन्द्र जीत : भारतीय शिक्षा का विकास व समस्याएं, सरस्वती सदन मसूरी

२८– भटनागर, सुरेश : आधुनिक भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएं, देहरादून

२६– मुखर्जी, एस०एम० : हिस्ट्री आफ एजुकेशन इन इण्डिया, आचार्या बुक डिपो, बड़ौदा, १६६६

३०– रावत, प्यारेलाल : भारतीय शिक्षा का इतिहास, रामप्रसाद एण्ड सन्स आगरा, १६७०

३१– रीटचर, जे०ए० : ए हिस्ट्री ऑफ मिशन्स इन इण्डिया द्वारा एस०एस० मूर लन्दन ओलीफेन्ट, १६०८

३२– रस्तोगी, के०जी० : भारतीय शिक्षा का विकास एवं समस्याएं, रस्तोगी पब्लिकेशन शिवाजी रोड मेरठ, १६६१

३३– राय, पारसनाथ : अनुसन्धान परिचय, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल आगरा, १६६६

३४– राय, बी०सी० : कम्परेटिव एजुकेशन, सीतापुर रोड, लखनऊ

३५– लाल, आर०वी० : फिलासफिकल एण्ड साइकॉलाजिकल प्रिन्सिपल्स ऑफ एजुकेशन, रस्तोगी पब्लिकेशन्स मेरठ, १६८८

३६– वेस्ट, जान डब्ल्यू : रिसर्च इन एजुकेशन, प्रेन्टिस हाल न्यूयार्क, १६६३

३७– वकील, के०एस० : एजुकेशन इन इण्डिया, कोल्हापुर टीचर्स कालेज, १६३७

३८– वशिष्ठ, के०के० : विद्यालय संगठन एवं भारतीय शिक्षा की समस्याएं, इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस बेगम ब्रिज मेरठ, १६६२

३६— सिंघल, महेशचन्द्र : भारतीय शिक्षा की वर्तमान समस्याएं, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपुर

४०— शुक्ला, एस०जे० : एजुकेशनल डेवलपमेंट इन ब्रिटिश इण्डिया, नई दिल्ली, १६४७

४१— सिक्वेरा, टी०एन० : द एजुकेशन ऑफ़ इण्डिया लन्दन ऑक्सफोर्ड, १६५२

४२— सारस्वत, मालती व बाजपेयी, एल०वी० : भारतीय शिक्षा का विकास एवं सामयिक समस्याए आलोक प्रकाशन लखनऊ, १६६४